।। अथ श्रीसाईसच्चरित।। ।। अध्याय १६-१७ ।।

शीघ्र ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति, ब्रह्मज्ञान की योग्यताएँ, बाबा का उपदेश, बाबा का वैशिष्ट्य
(इन दो अध्यायों में एक धनाढ्य ने किस प्रकार साईबाबा से शीघ्र ब्रह्मज्ञान प्राप्त करना चाहा था, उसका वर्णन है।)

पूर्व विषय

गत अध्याय में श्री चोलकर का अल्प संकल्प किस प्रकार पूर्णतः फलीभूत हुआ, इसका वर्णन किया गया हैं। उस कथा में श्रीसाईबाबा ने दर्शाया था कि प्रेम तथा भक्तिपूर्वक अर्पित की हुई तुच्छ वस्तु भी वे सहर्ष स्वीकार कर लेते थे, परन्तु यदि वह अहंकारसहित भेंट की गई तो वह अस्वीकृत कर दी जाती थी। पूर्ण सच्चिदानन्द होने के कारण वे बाह्य आचार -विचारों को विशेष महत्त्व न देते थे और विनम्रता और आदरसहित भेंट की गई वस्तु का स्वागत करते थे।

यथार्थ में देखा जाय तो सद्गुरु साईबाबा से अधिक दयालु और हितैषी दूसरा इस संसार में कौन हो सकता है? उनकी तुलना (समानता) समस्त इच्छाओं को पूर्ण करने वाली चिन्तामणि या कामधेनु से भी नहीं हो सकती। जिस अमूल्य निधि की उपलब्धि हमें सद्गुरु से होती है, वह कल्पना से भी परे है।

ब्रह्मज्ञान-प्राप्ति की इच्छा से आए हुए एक धनाढ्य व्यक्ति को श्रीसाईबाबा ने किस प्रकार उपदेश किया, उसे अब श्रवण करें।

एक धनी व्यक्ति (दुर्भाग्य से मूल ग्रंथ में उसका नाम और परिचय नहीं दिया गया है) अपने जीवन में सब प्रकार से संपन्न था। उसके पास अतुल सम्पत्ति, घोड़े, भूमि और अनेक दास और दासियाँ थीं। जब बाबा की कीर्त्ति उसके कानों तक पहुँची तो उसने अपने एक मित्र से कहा कि '' मेरे लिए अब किसी वस्तु की अभिलाषा शेष नहीं रह गई है, इसलिए अब शिरडी जाकर बाबा से ब्रह्मज्ञान प्राप्त करना चाहिए और यदि किसी प्रकार उसकी प्राप्ति हो गई तो फिर मुझसे अधिक सुखी और कौन हो सकता है?'' उनके मित्र ने उन्हें समझाया कि ''ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति सहज नहीं है, विशेषकर तुम जैसे मोहग्रस्त को, जो सदैव स्त्री, सन्तान और द्रव्योपार्जन में ही फँसा रहता है। तुम्हारी ब्रह्मज्ञान की आकांक्षा की पूर्त्ति कौन करेगा, जो भूलकर भी कभी एक फूटी कौड़ी का भी दान नहीं देता ?''

अपने मित्र के परामर्श की उपेक्षा कर वे आने-जाने के लिए एक ताँगा लेकर शिरडी आये और सीधे मस्जिद पहुँचे। साईबाबा के दर्शन कर उनके चरणों पर गिरे और प्रार्थना की कि ''आप यहाँ आनेवाले समस्त लोगों को अल्प समय में ही ब्रह्म-दर्शन करा देते हैं, केवल यही सुनकर मैं बहुत दूर से इतना मार्ग चलकर आया हूँ । मैं इस यात्रा से अधिक थक गया हूँ। यदि कहीं मुझे ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति हो जाए तो मैं यह कष्ट उठाना अधिक सफल और सार्थक समझूँगा।''

बाबा बोले '' मेरे प्रिय मित्र । इतने अधीर न होओ। मैं तुम्हें शीघ्र ही ब्रह्म का दर्शन करा दूँगा। मेरे सब व्यवहार तो नगद ही हैं और मैं उधार कभी नहीं करता। इसी कारण अनेक लोग धन, स्वास्थ्य, शक्ति, मान, पद आरोग्य तथा अन्य पदार्थो की इच्छापूर्त्ति के हेतु मेरे समीप आते हैं। ऐसा तो कोई विरला ही आता है, जो ब्रह्मज्ञान का पिपासु हो । भौतिक पदार्थों की अभिलाषा से यहाँ आने वाले लोगों का कोई अभाव नहीं, परन्तु आध्यात्मिक जिज्ञासुओं का आगमन बहुत ही दुर्लभ है। मैं सोचता हूँ कि यह क्षण मेरे लिए बहुत ही धन्य तथा शुभ है, जब आप जैसे महानुभाव यहाँ पधारकर मुझे ब्रह्मज्ञान देने के लिए जोर दे रहे हैं। मैं सहर्ष आपको ब्रह्म-दर्शन करा दूँगा।''

यह कहकर बाबा ने उन्हें ब्रह्म - दर्शन कराने के हेतु अपने पास बिठा लिया और इधर-उधर की चर्चाओं में लगा दिया, जिससे कुछ समय के लिए वे अपना प्रश्न भूल गए। उन्होंने एक बालक को बुलाकर नंदू मारवाड़ी के यहाँ से पाँच रुपए उधार लाने को भेजा । उड़के ने वापस आकर बतलाया कि नन्दू का तो कोई पता नहीं है और उसके घर पर ताला पड़ा है। फिर बाबा ने उसे दूसरे व्यापरी के यहाँ भेजा। इस बार भी लड़का रुपए लाने में असफल ही रहा। इस प्रयोग को दो-तीन बार दुहराने पर भी उसका परिणाम पूर्ववत् ही निकला।

हमें ज्ञात ही है कि बाबा स्वयं सगुण ब्रह्म के अवतार थे। यहाँ प्रश्न हो सकता है कि इस पाँच रुपये जैसी तुच्छ राशि की यथार्थ में उन्हें आवश्यकता ही क्या थी? और उस ऋण को प्राप्त करने के लिए इतना कठिन परिश्रम क्यों किया गया? उन्हें तो इसकी बिलकुल आवश्यकता ही न थी। वे तो पूर्ण रीति से जानते होंगे कि नन्दूजी घर पर नहीं है। यह नाटक तो उन्होंने केवल अन्वेषक के परीक्षार्थ ही रचा था। ब्रह्मजिज्ञासु महाशय जी के पास नोटों की अनेक गड्डियाँ थीं और यदि वे सचमुच ही ब्रह्मज्ञान के अकांक्षी होते तो इतने समय तक शान्त न बैठते। जब बाबा व्यग्रतापूर्वक पाँच रुपये उधार लाने के लिऐ बालक को यहाँ-वहाँ दौड़ा रहे थे तो वे दर्शन बने ही न बैठे रहते। वे जानते थे कि बाबा अपने वचन पूर्ण करके ऋण अवश्य चुकायेंगे। यद्यपि बाबा द्वारा इच्छित राशि बहुत ही अल्प थी, फिर भी वह स्वयं संकल्प करने में असमर्थ ही रहा और पाँच रुपया उधार देने तक का साहस न कर सका। पाठक थोड़ा विचार करें कि ऐसा व्यक्ति बाबा से ब्रह्मज्ञान, जो विश्व की अति श्रेष्ठ वस्तु है, उसकी प्राप्ति के लिए आया है। यदि बाबा से सचमुच प्रेम करने वाला अन्य कोई व्यक्ति होता तो वह केवल दर्शक न बनकर तुरन्त ही पाँच रुपये दे देता। परन्तु इन महाशय की दशा तो बिलकुल ही विपरीत थी। उन्होंने न रुपये दिए और न शान्त ही बैठे, वरन् वापस जल्द लौटने की तैयारी करने लगे और अधीर होकर बाबा से बोले कि '' अरे बाबा ! कृपया मुझे शीघ्र ब्रह्मज्ञान दो। '' बाबा ने उत्तर दिया कि '' मेरे प्यारे मित्र ! क्या इस नाटक से तुम्हारी समझ में कुछ नहीं आया? मैं तुम्हें ब्रह्मदर्शन कराने का ही तो प्रयन्त कर रहा था ! संक्षेप में तात्पर्य यह है कि ब्रह्म का दर्शन करने के लिए पाँच वस्तुओं का त्याग करना पड़ता हैः-

(१) पाँच प्राण
(२) पाँच इन्द्रियाँ
(३) मन
(४) बुद्धि तथा
(५) अहंकार।

यह हुआ ब्रह्मज्ञान। आत्मानुभूति का मार्ग भी उसी प्रकार है, जिस प्रकार तलवार की धार पर चलना ।''

श्री साईबाबा ने फिर इस विषय पर विस्तृत वक्तव्य दिया, जिसका सारांश यह हैः-

ब्रह्मज्ञान या आत्मानुभूति की योग्यताएँ

सामान्य मनुष्यों को प्रायः अपने जीवन-काल में ब्रह्म के दर्शन नहीं होते। उसकी प्राप्ति के लिए कुछ योग्यताओं का भी होना नितान्त आवश्यक है।

(१) **मुमुक्षुत्व (मुक्ति की तीव्र उत्कण्ठा)**

जो सोचता है कि मैं बन्धन में हूँ और इस बन्धन से मुक्त होना चाहे तो इस ध्येय की प्राप्ति के लिए उत्सुकता और दृढ़ संकल्प से प्रयन्त करता रहे तथा प्रत्येक परिस्थिति का सामना करने को तैयार रहे, वही इस आध्यात्मिक मार्ग पर चलने योग्य है।

(२) **विरक्ति**

लोक-परलोक के समस्त पदार्थों से उदासीनता का भाव। ऐहिक वस्तुएँ, लाभ और प्रतिष्ठा, जो कि कर्मजन्य हैं-जब तक इनसे उदासीनता उत्पन्न न होगी, तब तक उसे आध्यात्मिक जगत् में प्रवेश करने का अधिकार नहीं।

(३) **अन्तर्मुखता**

ईश्वर ने हमारी इन्द्रियों की रचना ऐसी की है कि उनकी स्वाभाविक वृत्ति सदैव बाहर की ओर आकृष्ट करती है। हमें सदैव बाहर का ही ध्यान रहता है, न कि अन्दर का। जो आत्मदर्शन और दैविक जीवन के इच्छुक हैं, उन्हें अपनी दृष्टि अंतर्मुखी बनाकर अपने आप में ही लीन होना चाहिए।

(४) पाप से शुद्धि

जब तक मनुष्य दुष्टता त्याग कर दुष्कर्म करना नहीं छोड़ता, तब तक न तो उसे पूर्ण शान्ति ही मिलती है और न मन ही स्थिर होता है। वह मात्र बुद्धि बल द्वारा ज्ञान-लाभ कदापि नहीं कर सकता।

(५) उचित आचरण

जब तक मनुष्य सत्यवादी, त्यागी और अन्तर्मुखी बनकर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए जीवन व्यतीत नहीं करता, तब तक उसे आत्मोपलब्धि संभव नहीं।

(६) सारवस्तु ग्रहण करना

दो प्रकार की वस्तुएँ हैं-नित्य और अनित्य। पहली आध्यात्मिक विषयों से संबंधित है तथा दूसरी सांसारिक विषयों से। मनुष्यों को इन दोनों का सामना करना पड़ता है। उसे विवेक द्वारा किसी एक का चुनाव करना पड़ता है। विद्वान पुरुष अनित्य से नित्य को श्रेयस्कर मानते हैं, परन्तु जो मूढ़मति हैं, वे आसक्तियों के वशीभूत होकर अनित्य को ही श्रेष्ठ जानकर उस पर आचरण करते हैं।

(७) मन और इन्द्रियों का निग्रह

शरीर एक रथ है। आत्मा उसका स्वामी तथा बुद्धि सारथी है। मन लगाम है और इन्द्रियाँ उसके घोड़े। इन्द्रिय-नियंत्रण ही उसका पथ है। जो अल्प बुद्धि हैं और जिनके मन चंचल हैं तथा जिनकी इन्द्रियाँ सारथी के दुष्ट घोड़ों के समान हैं, वे अपने गन्तव्य स्थान पर नहीं पहुँचते तथा जन्म-मृत्यु के चक्र में ही घूमते रहते हैं। परंतु जो विवेकशील हैं, जिन्होंने अपने मन पर नियंत्रण कर लिया है तथा जिनकी इन्द्रियाँ सारथी के उत्तम घोड़ों के समान नियंत्रण में हैं, वे ही गन्तव्य स्थान पर पहुँच पाते हैं, अर्थात् उन्हें परम पद की प्राप्ति हो जाती है और उनका पुनर्जन्म नहीं होता। जो व्यक्ति अपनी बुद्धि द्वारा मन को वश में कर लेता है, वह अन्त में अपना लक्ष्य प्राप्त कर, उस सर्वशक्तिमान् भगवान विष्णु के लोक में पहुँच जाता है।

(८) मन की पवित्रता

जब तक मनुष्य निष्काम कर्म नहीं करता, तब तक उसे चित्त की शुद्धि एवं आत्म-दर्शन संभव नहीं है। विशुद्ध मन में ही विवेक और वैराग्य उत्पन्न होते हैं, जिससे आत्म-दर्शन के पथ में प्रगति हो जाती है। अहंकारशून्य हुए बिना तृष्णा से छुटकारा पाना संभव नहीं है। विषय-वासना आत्मानुभूति के मार्ग में विशेष बाधक है। यह धारणा कि मैं शरीर हूँ, एक भ्रम है। यदि तुम्हें अपने जीवन के ध्येय (आत्मसाक्षात्कार) को प्राप्त करने की अभिलाषा है तो इस धारणा तथा आसक्ति का सर्वथा त्याग कर दो।

(९) गुरु की आवश्यकता

आत्मज्ञान इतना गूढ़ और रहस्यमय है कि मात्र स्वप्रयत्न से उसकी प्राप्ति संभव नहीं। इस कारण आत्मानुभूति प्राप्त गुरु की सहायता परम आवश्यक है। अत्यन्त कठिन परिश्रम और कष्टों के उपरान्त भी दूसरे क्या दे सकते हैं, जो ऐसे गुरु की कृपा से सहज ही प्राप्त हो सकता है? जिसने स्वयं उस मार्ग का अनुसरण कर अनुभव कर लिया हो, वही अपने शिष्य को भी सरलतापूर्वक पग-पग पर आध्यात्मिक उन्नति करा सकता है। १

१ तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्तदर्शिनः ।। - गीता ४ ।। ३४।।

(१०) अन्त में ईश-कृपा परमावश्यक है।

जब भगवान किसी पर कृपा करते हैं तो वे उसे विवेक और वैराग्य देकर इस भवसागर से पार कर देते हैं। यह आत्मानुभूति न तो नाना प्रकार की विद्याओं और बुद्धि द्वारा हो सकती है और न शुष्क वेदाध्ययन द्वारा ही। इसके लिए जिस किसी को यह आत्मा वरण करती है, उसी को प्राप्त होती है तथा उसी के सम्मुख वह अपना स्वरुप प्रकट करती है- कठोपनिषद में ऐसा ही वर्णन किया गया है।

बाबा का उपदेश

जब यह उपदेश समाप्त हो गया तो बाबा उन महाशन से बोले कि '' अच्छा, महाशय! आपकी जेब में पाँच रुपये के पचास गुणा रुपयों के रुप में ब्रह्म है, उसे कृपया बाहर निकालिए।'' उसने नोटों की गड्डी बाहर निकाली और गिनने पर सबको अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि वे दस-दस के पचीस नोट थे। बाबा की यह सर्वज्ञता देखकर वे महाशय द्रवित हो गए और बाबा के चरणों पर गिरकर आशीर्वाद की प्रार्थना करने लगे। तब बाबा बोले कि '' अपना ब्रह्म का (नोटों का) यह बण्डल लपेट लो। जब तक तुम्हारा लोभ और ईर्ष्या से पूर्ण छुटकारा नहीं हो जाता, तब तक तुम ब्रह्म के सत्यस्वरुप को नहीं जान सकते। जिसका मन धन, सन्तान और ऐश्वर्य में लगा है, वह इन सब आसक्तियों को त्यागे बिना कैसे ब्रह्म को जानने की आशा कर सकता है? आसक्ति का भ्रम और धन की तृष्णा दुःख का एक भँवर (विवर्त्त) है, जिसमें अहंकार और ईर्ष्या रुपी मगरों का वास है। जो निरिच्छ होगा, केवल वही यह भवसागर पार कर सकता है। तृष्णा और ब्रह्म के पारस्परिक संबंध इसी प्रकार के हैं। अतः वे परस्पर कट्टर शत्रु हैं।

तुलसीदासजी कहते हैंः-

'' जहाँ राम तहँ काम नहिं, जहाँ काम नहिं राम।
तुलसी कबहूँ होत नहिं, रवि रजनी इक ठाम ।।''

'' जहाँ लोभ है, वहाँ ब्रह्म के चिन्तन या ध्यान की गुंजाइश ही नहीं है। फिर लोभी पुरुष को विरक्ति और मोक्ष की प्राप्ति कैसे हो सकती है? लालची पुरुष को न तो शान्ति है और न सन्तोष ही; और न वह दृढ़ निश्चयी ही होता है। यदि कण मात्र भी लोभ मन में शेष रह जाए तो समझना चाहिए कि सब साधनाएँ व्यर्थ हो गयीं। एक उत्तम साधक यदि फलप्राप्ति की इच्छा या अपने कर्त्तव्यों का प्रतिफल पाने की भावना से मुक्त नहीं है और यदि उनके प्रति उसमें अरुचि उत्पन्न न हो तो सब कुछ व्यर्थ ही हुआ। वह आत्मानुभूति प्राप्त करने में सफल नहीं हो सकता। जो अहंकारी तथा सदैव विषय-चिंतन में रत हैं, उन पर गुरु के उपदेशों तथा शिक्षा का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। अतः मन की पवित्रता अत्यंत आवश्यक है; क्योंकि उसके बिना आध्यात्मिक साधनाओं का कोई महत्त्व नहीं तथा वह दम्भ ही है। इसलिए श्रेयस्कर यही है कि जिसे जो मार्ग बुद्धिगम्य हो, वह उसे ही अपनाए। मेरा खजाना पूर्ण है और मैं प्रत्येक की इच्छानुसार उसकी पूर्त्ति कर सकता हूँ; परन्तु मुझे पात्र की योग्यता-अयोग्यता का भी ध्यान रखना पड़ता है। जो कुछ मैं कह रहा हूँ, यदि तुम उसे एकाग्र होकर सुनोगे तो तुम्हें निश्चय ही लाभ होगा। इस मस्जिद में बैठकर मैं कभी असत्य भाषण नहीं करता। जब घर में किसी अतिथि को निमंत्रण दिया जाता है तो उसके साथ परिवार, अन्य मित्र और सम्बन्धी आदि भोजन करने के लिए आमंत्रित किए जाते हैं।'' बाबा द्वारा धनी महाशय को दिए गए इस-भोज में मस्जिद में उपस्थित सभी जन सम्मिलित थे। बाबा का आशीर्वाद प्राप्त कर सभी लोग उन धनी महाशय के साथ हर्ष और संतोषपूर्वक अपने-अपने घरों को लौट गए।

बाबा का वैशिष्ट्य

ऐसे सन्त अनेक हैं, जो घर त्याग जंगल की गुफाओं या झोपड़ियों में एकान्तं वास करते हुए अपनी मुक्ति या मोक्ष-प्राप्ति का प्रयन्त करते रहते हैं। वे दूसरों की किंचित् मात्र भी अपेक्षा न कर सदा ध्यानस्थ रहते हैं। श्री साईबाबा इस प्रकृति के न थे। यद्यपि उनके कोई घर द्वार, स्त्री और सन्तान, समीप या दूर के संबंधी न थे, फिर भी वे संसार में ही रहते थे। वे केवल चार-पाँच घरों से भिक्षा लेकर सदा नीमवृक्ष के नीचे निवास करते तथा सांसारिक व्यवहार करते रहते थे। इस विश्व में रहकर किस प्रकार आचरण करना चाहिए, इसकी भी वे शिक्षा देते थे। ऐसे साधु या सन्त प्रायः विरले ही होते हैं, जो स्वयं भगवत्प्राप्ति के पश्चात् लोगों के कल्याणार्थ प्रयत्न करें। श्री साईबाबा इन सब में अग्रणी थे, इसलिये हेमाडपंत कहते हैंः-

''वह देश धन्य है, वह कुटुम्ब धन्य है तथा वे माता-पिता धन्य हैं, जहाँ साईबाबा के रुप में यह असाधारण परम श्रेष्ठ, अनमोल विशुद्ध रत्न उत्पन्न हुआ।''

।। श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ।।

।। अथ श्रीसाईसच्चरित।। ।। अध्याय १८-१९ ।।

श्री. हेमाडपंत पर बाबा की कृपा कैसे हुई? - श्री. साठे और श्रीमती देशमुख की कथा, आनन्द प्राप्ति के लिए उत्तम विचारों को प्रोत्साहन, उपदेश में नवीनता, निंदा सम्बंधी उपदेश और परिश्रम के लिए मजदूरी।

ब्रह्मज्ञान हेतु लालायित एक धनी व्यक्ति के साथ बाबा ने किस प्रकार व्यवहार किया, इसका वर्णन हेमाड़पंत ने गत दो अध्यायों में किया है। अब हेमाड़पंत पर किस प्रकार बाबा ने अनुग्रह कर, उत्तम विचारों को प्रोत्साहन देकर उन्हें सफलीभूत किया तथा आत्मोन्नति व परिश्रम के प्रतिफल के सम्बन्ध में किस प्रकार उपदेश किए, इनका इन दो अध्यायों में वर्णन किया जाएगा ।

पूर्व विषय

यह विदित ही है कि सद्‌गुरु पहले अपने शिष्य की योग्यता पर विशेष ध्यान देते हैं। उनके चित्त को किंचित्मात्र भी डावाँडोल न कर वे उपयुक्त उपदेश देकर उन्हें आत्मानुभूति की ओर प्रेरित करते हैं। इस सम्बन्ध में कुछ लोगों का विचार है कि जो शिक्षा या उपदेश सद्‌गुरु द्वारा प्राप्त हो, उसे अन्य लोगों में प्रसारित न करना चाहिए। उनकी ऐसी भी धारणा है कि उसे प्रकट कर देने से उसका महत्व घट जाता है। यथार्थ में यह दृष्टिकोण संकुचित है। सद्‌गुरु तो वर्षा ॠतु के मेघसदृश हैं, जो सर्वत्र एक समान बरसते हैं, अर्थात् वे अपने अमृततुल्य उपदेशों को विस्तृत क्षेत्र में प्रसारित करते हैं। प्रथमतः उनके सारांश को ग्रहण कर आत्मसात् कर लें और फिर संकीर्णता से रहित होकर अन्य लोगों में प्रचार करें। यह नियम जागृत और स्वप्न दोनों अवस्थाओं में प्राप्त उपदेशों के लिए है। उदाहरणार्थ बुधकौशिक ॠषि ने स्वप्न में प्राप्त प्रसिद्ध 'रामरक्षा स्तोत्र' साधारण जनता के हितार्थ प्रगट कर दिया था।

जिस प्रकार एक दयालु माता, बालक के उपचारार्थ कड़वी औषधि का बलपूर्वक प्रयोग करती है, उसी प्रकार श्री साईबाबा भी अपने भक्तों के कल्याणार्थ ही उपदेश दिया करते थे। वे अपनी पद्धति गुप्त न रखकर पूर्ण स्पष्टता को ही अधिक महत्व देते थे। इसी कारण जिन भक्तों ने उनके उपदेशों का पूर्णतः पालन किया, वे अपने ध्येय की प्राप्ति में सफल हुए। **श्री साईबाबा जैसे सद्‌गुरु ही ज्ञान-चक्षुओं को खोलकर आत्मा की दिव्यता का अनुभव करा देने में समर्थ हैं।** विषयवासनाओं से आसक्ति नष्ट कर वे भक्तों की इच्छाओं को पूर्ण कर देते हैं; जिसके फलस्वरुप ही ज्ञान और वैराग्य प्राप्त होकर, ज्ञान की उत्तरोत्तर उन्नति होती रहती है। यह सब केवल उसी समय सम्भव है, जब हमें सद्‌गुरु का सान्निध्य प्राप्त हो तथा सेवा के पश्चात् हम उनके प्रेम को प्राप्त कर सकें। तभी भगवान भी, जो भक्तकामकल्पतरु हैं, हमारी सहायतार्थ आ जाते हैं। वे हमें कष्टों और दुःखों से मुक्त कर सुखी बना देते हैं। यह सब प्रगति केवल सद्‌गुरु की कृपा से ही सम्भव है, जो कि स्वयं ईश्वर के प्रतीक हैं। इसलिए हमें सद्‌गुरु की खोज में सदैव रहना चाहिए। अब हम मुख्य विषय की ओर आते हैं।

श्री साठे

एक महानुभव का नाम श्री. साठे था। क्राफर्ड के शासनकाल में कई वर्ष पूर्व, उन्हें कुछ ख्याति प्राप्त हो चुकी थी। इस शासन का बम्बई के गवर्नर लार्ड रे ने दमन कर दिया था। श्री. साठे को व्यापार में अधिक हानि हुई और परिस्थितियाँ प्रतिकूल होने के कारण उन्हें बड़ा धक्का लगा। वे अत्यन्त दुःखित और निराश हो गए और अशान्त होने के कारण वे घर छोड़कर किसी एकान्त स्थान में वास करने का विचार करने लगे। बहुधा मनुष्यों को ईश्वर की स्मृति आपत्तिकाल तथा दुर्दिनों में ही आती है और उनका विश्वास भी ईश्वर की ओर ऐसे ही समय में बढ़ जाता है। तभी वे कष्टों के निवारणार्थ उनसे प्रार्थना करने लगते हैं। यदि उनके पापकर्म शेष न रहे हों तो भगवान् भी उनकी भेंट किसी संत से करा देते हैं, जो उनके कल्याणार्थ ही उचित मार्ग का निर्देश कर देते हैं। ऐसा ही श्री. साठे के साथ भी हुआ। उनके एक मित्र ने उन्हें शिरड़ी जाने की सलाह दी, जहाँ मन की शांति प्राप्त करने और इच्छा पूर्ति

के निमित्त, देश के कोने कोने से लोगों के झुंड आते जो रहे हैं। उन्हें यह विचार अति रुचिकर प्रतीत हुआ और सन् १९१७ में वे शिरड़ी गए। बाबा के सनातन, पूर्ण-ब्रह्म, स्वयं दीप्तिमान, निर्मल एवं विशुद्ध स्वरुप के दर्शन कर उनके मन की व्यग्रता नष्ट हो गई और उनका चित्त शान्त एवं स्थिर हो गया। उन्होंने सोचा कि गत जन्मों के संचित शुभ कर्मों के फलस्वरुप ही आज मैं श्री साईबाबा के पवित्र चरणों तक पहुँचने में समर्थ हो सका हूँ। श्री. साठे दृढ़ संकल्प के व्यक्ति थे। इसलिए उन्होंने शीघ्र ही गुरुचरित्र का पारायण प्रारम्भ कर दिया। जब एक सप्ताह में ही चरित्र की प्रथम आवृत्ति समाप्त हो गई, तब बाबा ने उसी रात्रि को उन्हें एक स्वप्न दिया, जो इस प्रकार हैः-

बाबा अपने हाथ में चरित्र लिए हुए हैं और श्री. साठे को कोई विषय समझा रहे हैं तथा श्री. साठे सम्मुख बैठे ध्यानपूर्वक श्रवण कर रहे हैं। जब उनकी निद्रा भंग हुई तो स्वप्न को स्मरण कर वे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने विचार किया कि यह बाबा की अत्यंत कृपा है, जो इस प्रकार अचेतनावस्था में पड़े हुए लोगों को जागृत कर उन्हें 'गुरुचरित्र' का अमृतपान करने का अवसर प्रदान करते हैं। उन्होंने यह स्वप्न श्री. काकासाहेब दीक्षित को सुनाया और श्री साईबाबा के पास प्रार्थना करने को कहा कि इसका यथार्थ अर्थ क्या है और क्या एक सप्ताह का पारायण ही मेरे लिए पर्याप्त है अथवा उसे पुनः प्रारम्भ करुँ? श्री. काकासाहेब दीक्षित ने उचित अवसर पाकर बाबा से पूछा कि '' हे देव! उस दृष्टांत से आपने श्री. साठे को क्या उपदेश दिया है? क्या वे पारायण सप्ताह स्थगित कर दें? वे एक सरलहृदय भक्त हैं। इसलिए उनकी मनोकामना आप पूर्ण करें और हे देव ! कृपाकर उन्हें इस स्वप्न का यथार्थ अर्थ भी समझा दें।'' तब बाबा बोले कि '' उन्हें गुरु चरित्र का एक सप्ताह और पारायण करना उचित है। यदि वे ध्यानपूर्वक पाठ करेंगे तो उनका चित्त शुद्ध हो जाएगा और शीघ्र ही कल्याण होगा। ईश्वर भी प्रसन्न होकर उन्हें भव-बन्धन से मुक्त कर देंगे।'' इस अवसर पर श्री. हेमाड़पंत भी वहाँ उपस्थित थे और बाबा के चरणकमलों की सेवा कर रहे थे। बाबा के वचन सुनकर उन्हें विचार आया कि साठे को केवल सप्ताह के पारायण से ही मनोवांछित फल की प्राप्ति हो गई, जब कि मैं गत ४० वर्षो से 'गुरुचरित्र' का पारायण कर रहा हूँ, जिसका कोई परिणाम अब तक न निकला। उनका केवल सात दिनों तक शिरड़ी निवास ही सफल हुआ और मेरा गत सात वर्ष का (१९१०-१७) सहवास क्या व्यर्थ हो गया? चातक पक्षी के समान मैं सदा उस कृपाघन की राह देखा करता हूँ, जो मेरे ऊपर अमृतवर्षण करें। वे कब मुझे अपने उपदेश देने की कृपा करेंगे? ऐसा विचार उनके मस्तिष्क में आया ही था कि बाबा को सब ज्ञात हो गया। ऐसा भक्तों ने सदैव ही अनुभव किया है कि उनके समस्त विचारों को जानकर बाबा तुरन्त कुविचारों का दमन कर उत्तम विचारों को प्रोत्साहित करते थे। हेमाड़पंत का ऐसा विचार जानकर बाबा ने तुरन्त ही आज्ञा दी कि शामा के यहाँ जाओ और कुछ समय उनसे वार्त्तालाप कर, १५ रुपये दक्षिणा ले आओ। बाबा को दया आ गई थी। इसी कारण उन्होंने ऐसी आज्ञा दी। उनकी अवज्ञा करने का साहस भी किसे था? श्री. हेमाड़पंत शीघ्र शामा के घर पहुँचे। इस समय पर शामा स्नान कर धोती पहन रहे थे। उन्होंने बाहर आकर हेमाड़पंत से पूछा कि '' आप यहाँ कैसे? जान पड़ता है कि आप मस्जिद से ही आ रहे हैं तथा आप ऐसे व्यथित और उदास क्यों हैं? आप अकेले ही क्यों आये हैं? आइए, बैठिए और थोड़ा विश्राम तो करिए। जब तक मैं पूजनादि से भी निवृत्त हो जाऊँ, तब तक आप कृपा कर के पान आदि लें। इसके पश्चात् ही हम और आप सुखपूर्वक वार्त्तालाप करें।'' ऐसा कहकर वे भीतर चले गए। दालान में बैठे-बैठे हेमाडपंत की दृष्टि अचानक खिड़की पर रखी 'नाथ भागवत' पर पड़ी। 'नाथ भागवत' श्री एकनाथ द्वारा रचित महाभागवत के ११ वें स्कन्ध पर मराठी भाषा में की हुई एक टीका है। श्री साईबाबा की आज्ञानुसार श्री. बापूसाहेब जोग और श्री. काकासाहेब दिक्षित शिरड़ी में नित्य भगवदगीता का मराठी टीकासहित, जिसका नाम भावार्थ दीपिका या ज्ञानेश्वरी है (कृष्ण और भक्त अर्जुन संवाद), नाथ भागवत (श्रीकृष्ण उद्धव संवाद) और एकनाथ का महान् ग्रन्थ भावार्थरामायण का पठन किया करते थे। जब भक्तगण बाबा से कोई प्रश्न पूछने आते तो वे कभी आंशिक उत्तर देते और कभी उनको उपर्युक्त भागवत तथा प्रमुख ग्रंथों का श्रवण करने को कहते थे, जिन्हें सुनने पर भक्तों को अपने प्रश्नों के पूर्णतया संतोषप्रद उत्तर प्राप्त हो जाते थे। श्री. हेमाड़पंत भी नित्य प्रति'नाथ भागवत' के कुछ अंशों का पाठ किया करते थे।

आज प्रातः मस्जिद को जाते समय कुछ भक्तों के सत्संग के कारण उन्होंने अपना नित्य नियमानुसार पाठ अधूरा ही छोड़ दिया था। उन्होंने जैसे ही वह ग्रन्थ उठा कर खोला तो अपने अपूर्ण भाग का पृष्ठ सामने देखकर उनको आश्चर्य हुआ। उन्होंने सोचा कि बाबा ने इसी कारण ही मुझे यहाँ भेजा है, ताकि मैं अपना शेष पाठ पूरा कर लूँ और उन्होंने शेष अंश का पाठ आरम्भ कर दिया। पाठ पूर्ण होते ही शामा भी बाहर आए और उन दोनों में वार्त्तालाप होने लगा। हेमाड़पंत ने कहा कि मैं बाबा का एक संदेश लेकर आपके पास आया हूँ! उन्होंने मुझे आपसे १५ रुपये दक्षिणा लाने तथा थोड़ी देर वार्त्तालाप कर आपको अपने साथ लेकर मस्जिद वापस आने की आज्ञा दी है।

शामा आश्चर्य से बोले '' मेरे पास तो एक फूटी कौड़ी भी नहीं है। इसलिए आप रुपयों के बदले दक्षिणा में मेरे पंद्रह नमस्कार ही ले जाओ ।'' तब हेमाडपंत ने कहा कि ठीक है, मुझे आपके पन्द्रह नमस्कार ही स्वीकार हैं। आइए, अब हम कुछ वार्त्तालाप करें और कृपा कर बाबा की कुछ लीलाएँ आप मुझे सुनाए, जिससे पाप नष्ट हो। शामा बोले'' तो कुछ देर बैठो। इस ईश्वर(बाबा) की लीला अद्‌भुत है। कहाँ मैं एक अशिक्षित देहाती और कहाँ आप एक विद्वान्, यहाँ आने के पश्चात् तो आप बाबा की अनेक लीलाएँ स्वयं देख ही चुके हैं, जिनका अब मैं आपके सामने कैसे वर्णन कर सकता हूँ? अच्छा, यह पान-सुपारी तो खाओ, तब तक मैं कपड़े पहन लूँ।''

थोड़ी देर में शामा बाहर आए और फिर उन दोनों में इस प्रकार वार्त्तालाप होने लगाः-

शामा बोले-''इस परमेश्वर(बाबा) की लीलाएँ अगाध हैं, जिसका कोई पार नहीं। वे तो लीलाओं से अलिप्त रहकर सदैव विनोद किया करते हैं। इसे हम अज्ञानी जीव क्या समझ सकें? बाबा स्वयं ही क्यों नहीं कहते? आप जैसे विद्वान् को मुझ जैसे मूर्ख के पास क्यों भेजा है? उनकी कार्यप्रणाली की कल्पना के परे है। मैं तो इस विषय में केवल इतना ही कह सकता हूँ कि वे लौकिक नहीं हैं। इस भूमिका के साथ ही साथ शामा ने कहा कि अब मुझे एक कथा की स्मृति हो आई है, जिसे मैं व्यक्तिगत रुप से जानता हूँ! **जैसी भक्त की निष्ठा और भाव होता है, बाबा भी उसी प्रकार उनकी सहायता करते हैं। कभी कभी तो बाबा भक्त की कठिन परीक्षा लेकर ही उसे उपदेश दिया करते हैं।''** 'उपदेश' शब्द सुनकर साठे के गुरुचरित्र-पारायण की घटना का तत्काल ही स्मरण करके हेमाड़पंत को रोमांच हो आया। उन्होंने सोचा, कदाचित् बाबा ने मेरे चित्त की चंचलता नष्ट करने के लिए ही मुझे यहाँ भेजा है? फिर भी वे अपने विचार प्रकट न कर, शामा की कथा को ध्यानपूर्वक सुनने लगे। उन सब कथाओं का सार केवल यही था कि अपने भक्तों के प्रति बाबा के मन में कितनी दया और स्नेह है। इन कथाओं को श्रवण कर हेमाड़पंत को आंतरिक उल्लास का अनुभव होने लगा। तब शामा ने नीचे लिखी कथा कहीः-

श्रीमती राधाबाई देशमुख

एक समय एक वृद्धा, श्रीमती राधाबाई, जो खाशाबा देशमुख की माँ थीं, बाबा की कीर्ति सुनकर संगमनेर के लोगों के साथ शिरड़ी आईं। बाबा के श्री दर्शन कर उन्हें अत्यन्त प्रसन्नता हुई। श्री साई-चरणों में उनकी अटल श्रद्धा थी। इसलिए उन्होंने यह निश्चय किया कि जैसे भी हो, बाबा को अपना गुरु बना, उनसे उपदेश ग्रहण किया जाए।

आमरण अनशन का दृढ़ निश्चय कर अपने विश्राम गृह में आकर उन्होंने अन्न-जल त्याग दिया और इस प्रकार तीन दिन व्यतीत हो गए। मैं इस वृद्धा की अग्निपरीक्षा से बिल्कुल भयभीत हो गया और बाबा से प्रार्थना करने लगा कि ''देव! आपने अब यह क्या करना आरम्भ कर दिया है? ऐसे कितने लोगों को आप यहाँ आकर्षित किया करते हैं? आप उस वृद्ध महिला से पूर्ण परिचित ही हैं, जो हठपूर्वक आप पर अवलम्बित है। यदि आपने कृपादृष्टि कर उसे उपदेश न दिया और यदि दुर्भाग्यवश उसे कुछ हो गया तो लोग व्यर्थ ही आपको दोषी ठहराएँगे और कहेंगे कि बाबा से उपदेश प्राप्त न होने की वजह से ही उसकी मृत्यु हो गई है। इसलिए अब दया कर उसे आशीष और उपदेश दीजिए।'' वृद्धा का ऐसा दृढ़ निश्चय देख कर बाबा ने उसे अपने पास बुलाया और मधुर उपदेश देकर उसकी मनोवृत्ति परिवर्तित कर कहा कि '' हे माता ! क्यों व्यर्थ ही तुम यातना सहकर मृत्यु का आलिंगन करना चाहती हो! तुम मेरी माँ और मैं तुम्हारा बेटा। तुम मुझ पर दया करो और जो कुछ मैं कहूँ, उसे ध्यानपूर्वक सुनो । मैं अपनी स्वयं की कथा तुमसे कहता हूँ और यदि तुम उसे ध्यानपूर्वक श्रवण करोगी तो तुम्हें अवश्य परम शान्ति प्राप्त होगी। मेरे एक गुरु, जो बड़े सिद्ध पुरुष थे, मुझ पर बड़े दयालु थे। दीर्घ काल तक मैं उनकी सेवा करता रहा, फिर भी उन्होंने मेरे कानों में कोई मंत्र न फूँका। मैं उनसे कभी अलग होना भी नहीं चाहता था। मेरी प्रबल उत्कंठा थी कि उनकी सेवा कर जिस प्रकार भी सम्भव हो, मंत्र प्राप्त करूँ। परन्तु उनकी रीति तो न्यारी ही थी। उन्होंने पहले मेरा मुंडन कर मुझसे दो पैसे दक्षिणा में माँगे, जो मैंने तुरन्त ही दे दिए। यदि तुम प्रश्न करो कि मेरे गुरु जब पूर्णकाम थे तो उन्हें पैसे माँगना क्या शोभनीय था? और फिर उन्हें विरक्त भी कैसे कहा जा सकता था? इसका उत्तर केवल यह है कि वे कांचन को ठुकराया करते थे, क्योंकि उन्हें उसकी स्पप्न में भी आवश्यकता न थी। उन दो पैसों का अर्थ था (१) दृढ़ निष्ठा और (२) धैर्य। जब मैंने ये दोनों वस्तुएँ उन्हें अर्पित कर दीं तो वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। मैंने बारह वर्ष उनके श्रीचरणों की सेवा में ही व्यतीत किए। उन्होंने ही मेरा भरण-पोषण किया। अतः मुझे भोजन और वस्त्रों का कोई अभाव न था। वे प्रेम की मूर्त्ति थे अथवा यूँ कहो कि वे प्रेम के साक्षात् अवतार थे। मैं उनका वर्णन ही कैसे कर सकता हूँ, क्योंकि उनका तो मुझ पर अधिक स्नेह था और उनके समान गुरु कोई बिरला

ही मिलेगा। जब मैं उनकी ओर निहारता तो मुझे ऐसा प्रतीत होता कि वे गम्भीर मुद्रा में ध्यानमग्न हैं और तब हम दोनों आनंदित हो जाते थे। आठों प्रहर मैं एक टक उनके ही श्रीमुख की ओर निहारा करता था। मैं भूख और प्यास की सुध-बुध खो बैठा। उनके दर्शनों के बिना मैं अशान्त हो उठता था। गुरु-सेवा की चिन्ता के अतिरिक्त मेरे लिए कोई और चिन्तनीय विषय या पदार्थ न था। मुझे तो सदैव उन्हीं का ध्यान रहता था। अतः मेरा मन उनके चरण-कमलों में मग्न हो गया। यह हुई एक पैसे की दक्षिणा। धैर्य है दूसरा पैसा। मैं धैर्यपूर्वक बहुत काल तक प्रतीक्षा कर गुरुसेवा करता रहा। **यही धैर्य तुम्हें भी भवसागर से पार उतार देगा। धैर्य ही मनुष्य में मनुष्यत्व है। धैर्य धारण करने से समस्त पाप और मोह नष्ट होकर उनके हर प्रकार के संकट दूर होते तथा भय जाता रहता है।** इसी प्रकार तुम्हें भी अपने ध्येय की प्राप्ति हो जाएगी। धैर्य तो गुणों की खान व उत्तम विचारों की जननी है। निष्ठा और धैर्य दो जुड़वाँ बहनों के समान ही हैं, जिनमें परस्पर प्रगाढ़ प्रेम है।''

''मेरे गुरु मुझसे किसी वस्तु की आकांक्षा न रखते थे। उन्होंने कभी मेरी उपेक्षा न की, वरन् सदैव रक्षा करते रहे। यद्यपि मैं सदैव उनके चरणों के समीप ही रहता था, फिर भी कभी किन्हीं अन्य स्थानों पर यदि चला जाता तो भी मेरे प्रेम में कभी कमी न हुई। वे सदा मुझ पर कृपा दृष्टि रखते थे। जिस प्रकार कछुवी प्रेमदृष्टि से अपने बच्चों का पालन करती है, चाहे वे उसके समीप हों अथवा नदी के उस पार। सो हे माँ! मेरे गुरु ने तो मुझे कोई मंत्र सिखाया ही नहीं, तब मैं तुम्हारे कान में कैसे कोई मंत्र फूँकूँ? केवल इतना ही ध्यान रखो कि गुरु की भी कछुवी के समान ही प्रेम-दृष्टि से हमें संतोष प्राप्त होता है। इस कारण **व्यर्थ में किसी से उपदेश प्राप्त करने का प्रयत्न न करो। मुझे ही अपने विचारों तथा कर्मों का मुख्य ध्येय बना लो और तब तुम्हें निस्संदेह ही परमार्थ की प्राप्ति हो जाएगी। मेरी ओर अनन्य भाव से देखो तो मैं भी तुम्हारी ओर वैसे ही देखूँगा। इस मस्जिद में बैठकर मैं सत्य ही बोलूँगा कि किन्हीं साधनाओं या शास्त्रों के अध्ययन की आवश्यकता नहीं, वरन् केवल गुरु में विश्वास ही पर्याप्त है। पूर्ण विश्वास रखो कि गुरु ही कर्त्ता है और वह धन्य है, जो गुरु की महानता से परिचित हो उसे हरि, हर और ब्रह्म (त्रिमूर्ति) का अवतार समझता है।''**

इस प्रकार समझाने से वृद्ध महिला को सान्त्वना मिली और उसने बाबा को नमन कर अपना उपवास त्याग दिया। यह कथा ध्यानपर्वक एकाग्रता से श्रवण कर तथा उसके उपयुक्त अर्थ पर विचार कर हेमाड़पंत को बड़ा आश्चर्य हुआ। उनका हृदय भर आया और उन्हें रोमांच हो उठा। अत्यंत आनन्दविभोर हो जाने से उनका कंठ रुँध गया और वे मुख से एक शब्द भी न बोल सके। उनकी ऐसी स्थिति देख शामा ने पूछा कि ''आप ऐसे स्तब्ध क्यों हो गए? बात क्या है? बाबा की तो इस प्रकार की लीलाए अगणित हैं, जिनका वर्णन मैं किस मुख से करुँ?''

ठीक उसी समय मस्जिद में घण्टानाद होने लगा, जो कि मध्याह्न पूजन तथा आरती के आरम्भ का द्योतक था। तब शामा और हेमाड़पंत भी शीघ्र ही मस्जिद की ओर चले। बापूसाहेब जोग ने पूजन आरम्भ कर दिया था, स्त्रियाँ मस्जिद में ऊपर खड़ी थीं और पुरुष वर्ग नीचे मंडप में। सब उच्च स्वर में वाद्यों के साथ-साथ आरती गा रहे थे। तभी हेमाड़पंत का हाथ पकड़े हुए शामा भी ऊपर पहुँचे और वे बाबा के दाहिनी ओर तथा हेमाडपंत बाबा के सामने बैठ गए। उन्हें देख बाबा ने शामा से लाई हुई दक्षिणा देने के लिये कहा। तब हेमाडपंत ने उत्तर दिया कि रुपयों के बदले शामा ने मेरे द्वारा आपको पन्द्रह नमस्कार भेजे हैं तथा स्वयं ही यहाँ आकर उपस्थित हो गए हैं। बाबा ने कहा, '' अच्छा, ठीक है। तो अब मुझे यह बताओ कि तुम दोनों में आपस में किस विषय पर वार्त्तालाप हुआ था?'' तब घंटे, ढोल और सामूहिक गान की ध्वनि की चिंता न करते हुए हेमाड़पंत उत्कंठापूर्वक उन्हें वह वार्त्तालाप सुनाने लगे। बाबा भी सुनने को अति उत्सुक थे। इसलिये वे तकिया छोड़कर थोड़ा आगे झुक गए। हेमाड़पंत ने कहा कि वार्त्ता अति सुखदायी थी, विशेषकर उस वृद्ध महिला की कथा तो ऐसी अद्‌भुत थी कि जिसे श्रवण कर मुझे तुरन्त ही विचार आया कि आपकी लीलाएँ अगाध हैं और इस कथा की ही ओट में आपने मुझ पर विशेष कृपा की है। तब बाबा ने कहा, वह तो बहुत ही आश्चर्यपूर्ण है। अब मेरी तुम पर कृपा कैसे हुई, इसका पूर्ण विवरण सुनाओ। कुछ काल पूर्व सुना वार्त्तालाप जो उनके हृदय पटल पर अंकित हो चुका था, वह सब उन्होंने बाबा को सुना दिया। वार्त्ता सुनकर बाबा अति प्रसन्न हो कहने लगे कि ''क्या कथा से प्रभावित होकर उसका अर्थ भी तुम्हारी समझ में आया है?'' तब हेमाडपंत ने उत्तर दिया कि '' हाँ, बाबा, आया तो है। उससे मेरे चित्त की चंचलता नष्ट हो गई है। अब यथार्थ में मैं वास्तविक शांति और सुख का अनुभव कर रहा हूँ तथा मुझे सत्य मार्ग का पता चल गया है। '' तब बाबा बोले, ''सुनो, मेरी पद्धति भी अद्वितीय है। यदि इस कथा का स्मरण रखोगे तो यह बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगी। **आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए ध्यान अत्यंत आवश्यक है** और यदि तुम इसका निरन्तर अभ्यास करते रहोगे

तो कुप्रवृत्तियाँ शांत हो जाएगी। तुम्हें आसक्ति रहित होकर सदैव ईश्वर का ध्यान करना चाहिए, जो सर्व प्राणियों में व्याप्त है और जब इस प्रकार मन एकाग्र हो जाएगा तो तुम्हें ध्येय की प्राप्ति हो जाएगी। मेरे निराकार सच्चिदानन्द स्वरुप का ध्यान करो। यदि तुम ऐसा करने में अपने को असमर्थ मानो तो मेरे साकार रुप का ही ध्यान करो, जैसा कि तुम मुझे दिन-रात यहाँ देखते हो। इस प्रकार तुम्हारी वृत्तियाँ केन्द्रित हो जाएँगी तथा ध्याता, ध्यान और ध्येय का पृथकत्व नष्ट होकर, ध्याता चैतन्य से एकत्व को प्राप्त कर ब्रह्म के साथ अभिन्न हो जाएगा। कछुवी नदी के इस किनारे पर रहती है और उसके बच्चे दूसरे किनारे पर। न वह उन्हें दूध पिलाती है और न हृदय से ही लगातार लेती है, वरन् केवल उसकी प्रेम-दृष्टि से ही उनका भरण- पोषण हो जाता है। छोटे बच्चे भी कुछ न करके केवल अपनी मॉं का ही स्मरण करते रहते हैं। उन छोटे-छोटे बच्चों पर कछुवी की केवल दृष्टि ही उन्हें अमृततुल्य आहार और आनन्द प्रदान करती है। ऐसा ही गुरु और शिष्य का भी सम्बन्ध है।'' बाबाने ये अंतिम शब्द कहे ही थे कि आरती समाप्त हो गई और सबने उच्च स्वर से -''श्री सच्चिदानन्द सद्‌गुरु साईनाथ महाराज की जय'' बोली। प्रिय पाठको! कल्पना करो कि हम सब भी इस समय उसी भीड़ और जयजयकार में सम्मिलित हैं।

आरती समाप्त होने पर प्रसाद वितरण हुआ। बापूसाहेब जोग हमेशा की तरह आगे बढ़े और बाबा को नमस्कार कर कुछ मिश्री का प्रसाद दिया। यह मिश्री हेमाड़पंत को देकर वे बोले कि '' यदि तुम इस कथा को अच्छी तरह से सदैव स्मरण रखोगे तो तुम्हारी भी स्थिति इस मिश्री के समान मधुर होकर समस्त इच्छाएँ पूर्ण हो जायेगी और तुम सुखी हो जाओगे।'' हेमाड़पंत ने बाबा को साष्टांग प्रणाम किया और स्तुति की कि ''प्रभो! इसी प्रकार दया कर सदैव मेरी रक्षा करते रहो।'' तब बाबा ने आशीर्वाद देकर कहा कि ''इन कथाओं को श्रवण कर, नित्य मनन तथा निदिध्यासन कर, सारे तत्व को ग्रहण करो; तब तुम्हें ईश्वर का सदा स्मरण तथा ध्यान बना रहेगा और वह स्वयं तुम्हारे समक्ष अपने स्वरुप को प्रकट कर देगा।'' प्यारे पाठको! हेमाड़पंत को उस समय मिश्री का प्रसाद भली भॉंति मिला, जो आज हमें इस कथामृत के पान करने का अवसर प्राप्त हुआ। आओ, हम भी उस कथा का मनन करें तथा उसका सारग्रहण कर बाबा की कृपा से स्वस्थ और सुखी हो जाए।

१९ वें अध्याय के अन्त में हेमाड़पंत ने कुछ और भी विषयों का वर्णन किया है, जो यहाँ दिए जाते हैं।

अपने बर्ताव के सम्बन्ध में बाबा का उपदेश

नीचे दिए हुए अमूल्य वचन सर्वसाधारण भक्तों के लिए हैं और यदि उन्हें ध्यान में रखकर आचरण में लाया गया तो सदैव ही कल्याण होगा। जब तक किसी से कोई पूर्व नाता या सम्बन्ध न हो, तब तक कोई किसी के समीप नहीं जाता। यदि कोई मनुष्य या प्राणी तुम्हारे समीप आवे तो उसे असभ्यता से न ठुकराओ। उसका स्वागत कर आदरपूर्वक बर्त्ताव करो। यदि तृषित को जल, क्षुधा-पीड़ित को भोजन, नंगे को वस्त्र और आगन्तुक को अपना दालन विश्राम करने को दोगे तो भगवान् श्रीहरि तुमसे निस्सन्देह प्रसन्न होंगे। यदि कोई तुमसे द्रव्य-याचना करे और तुम्हारी इच्छा देने की न हो तो न दो, परन्तु उसके साथ कुत्ते के समान ही व्यवहार न करो। तुम्हारी कोई कितनी ही निंदा क्यों न करे, फिर भी कटु उत्तर देकर तुम उस पर क्रोध न करो। यदि इस प्रकार ऐसे प्रसंगो से सदैव बचते रहे तो यह निश्चित ही है कि तुम सुखी रहोगे। संसार चाहे उलट-पलट हो जाए, परन्तु तुम्हें स्थिर रहना चाहिए। सदा अपने स्थान पर दृढ़ रहकर गतिमान दृश्य को शान्तिपूर्वक देखो। एक को दूसरे से अलग रखने वाली भेद (द्वैत) की दीवार नष्ट कर दो, जिससे अपना मिलन-पथ सुगम हो जाए। द्वैत भाव (अर्थात् मैं और तू) ही भेद-वृत्ति है, जो शिष्य अपने गुरु से पृथक् कर देती है। इसलिए जब तक इसका नाश न हो जाए, तब तक अभिन्नता प्राप्त करना सम्भव नहीं है। '' अल्लाह-मालिक'' अर्थात् ईश्वर ही सर्वशक्तिमान् है और उसके सिवा अन्य कोई संरक्षणकर्ता नहीं है। उनकी कार्यप्रणाली अलौकिक, अनमोल और कल्पना से परे है। उनकी इच्छा से ही सब कार्य होते हैं। वे ही मार्ग-प्रदर्शन कर सभी इच्छाएँ पूर्ण करते हैं। ऋणानुबन्ध के कारण ही हमारा संगम होता है, इसलिए हमें परस्पर प्रेम कर एक दूसरे की सेवा कर सदैव सन्तुष्ट रहना चाहिए। जिसने अपने जीवन का ध्येय (ईश्वर दर्शन) पा लिया है, वही धन्य और सुखी है। दूसरे तो केवल कहने को ही जब तक प्राण हैं, तब तक जीवित हैं।

उत्तम विचारों को प्रोत्साहन

यह ध्यान देने योग्य बात है कि श्रीसाईबाबा सदैव उत्तम विचारों को प्रोत्साहन दिया करते थे। इसलिए यदि हम प्रेम और भक्तिपूर्वक अनन्य भाव से उनकी शरण जाए तो हमें अनुभव हो जाएगा कि वे अनेक अवसरों पर हमें किस प्रकार सहायता पहुँचाते हैं? किसी संत का कथन है कि यदि प्रातः काल तुम्हारे हृदय में कोई उत्तम विचार

उत्पन्न हो और यदि तुम उसकी पुष्टि दिनभर करो तो वह तुम्हारा विवेक अत्यन्त विकसित और चित्त प्रसन्न कर देगा। हेमाड़पंत भी इसका अनुभव करना चाहते थे। इसलिये इस पवित्र शिरड़ी भूमि पर अगले शुभ गुरुवार के समूचे दिन नामस्मरण और किर्त्तन में ही व्यतीत करुँ, ऐसा विचार कर वे सो रहे। दूसरे दिन प्रातःकाल उठने पर उन्हें सहज ही राम-नाम का स्मरण हो आया, जिससे वे प्रसन्न हुए और नित्य कर्म समाप्त कर कुछ पुष्प लेकर बाबा के दर्शन करने को गए। जब वे दीक्षित का वाड़ा पार कर बूटी-वाड़े के समीप से जा रहे थे तो उन्हें एक मधुर भजन की ध्वनि, जो मस्जिद की ओर से आ रही थी, सुनाई पड़ी। यह एकनाथ का रोचक भजन औरंगाबादकर मधुर लयपूर्वक बाबा के समक्ष गा रहे थे-

गुरुकृपांजन पायो मेरे भाई। बिना कुछ मानत नाहीं।। ध्रु.।।
अन्दर रामा बाहर रामा । सपने में देखत सीतारामा।।१।। गुरु.।।
जागत रामा सोबत रामा । जहाँ देख वहीं पूरन कामा ।। २।। गुरु. ।।
एका जनार्दनी अनुभव नीका । जहाँ देखे वहाँ रामसरीखा ।। ३।। गुरु.।।

भजन अनेकों हैं, परन्तु विशेषकर यह भजन ही क्यों औरंगाबादकर ने चुना ? क्या यह बाबा द्वारा ही संयोजित विचित्र अनुरुपता नहीं है? और क्या यह हेमाड़पंत के गत दिन अखंड रामनाम स्मरण के संकल्प को प्रात्साहन नहीं है? सभी संतों का इस सम्बन्ध में एक ही मत है और सभी रामनाम के जप को प्रभावकारी तथा भक्तों की इच्छापूर्ति और सभी कष्टों से छुटकार पाने के लिए इसे एक अमोघ इलाज बतलाते हैं।

निन्दा सम्बन्धी उपदेश

उपदेश देने के लिए किसी विशेष समय या स्थान की प्रतीक्षा न कर बाबा यथायोग्य समय पर ही स्वतन्त्रतापूर्वक उपदेश दिया करते थे। एक बार एक भक्त ने बाबा की अनुपस्थिति में दूसरे लोगों के सम्मुख किसी को अपशब्द कहे। गुणों की उपेक्षा कर उसने अपने भाई के दोषारोपण में इतने बुरे से कटु वाक्यों का प्रयोग किया कि सुननेवालों को भी उसने प्रति घृणा होने लगी । बहुधा देखने में आता है कि लोग व्यर्थ ही दूसरों की निंदा कर झगड़ा और बुराईयाँ उत्पन्न करते हैं। संत तो परदोषों को दूसरी ही दृष्टि से देखा करते हैं। उनका कथन है कि शुध्दि के लिए उनेक विधियों में मिट्टी, जल और साबुन पर्याप्त है, परन्तु निंदा करने वालों की युक्ति भिन्न ही होती है। वे दूसरों के दोषों को केवल अपनी जिह्वा से ही दूर करते है और इस प्रकार वे दूसरो ं की निंदा कर उनका उपकार ही किया करते हैं, जिसके लिये वे धन्यवाद के पात्र है १ । निंदक को उचित मार्ग पर लाने के लिए साईबाबा की पद्धति सर्वथा ही भिन्न थी। वे तो सर्वज्ञ थे ही, इसलिए उस निंदक के कार्य को वे समझ गए। मध्याह्नकाल में जब लेण्डी के समीप उससे भेंट हुई, तब उन्होंने विष्ठा खाते हुए एक सुअर की ओर उँगली उठाकर उससे कहा कि-'' देखो, वह कितने प्रेमपुर्वक विष्ठा खा रहा है। तुम जी भरकर अपने भाइयों को सदा अपशब्द कहा करते हो और यह तुम्हारा आचरण भी ठीक उसी के सदृश ही है। **अनेक शुभ कर्मो के परिणामस्वरुप ही तुम्हें मानव-तन प्राप्त हुआ और इसलिए यदि तुमने इसी प्रकार आचरण किया तो शिरड़ी तुम्हारी सहायता ही क्या कर सकेगी ?''**

१ **निन्दक नियरे राखिये, आँगन कुटी छवाय।**
बिनु पानी साबुन बिना निर्मल करत सुभाय ।। - कबीर

कहने का तात्पर्य केवल यह है कि भक्त ने उपदेश ग्रहण कर लिया और वह वहाँ से चला गया। इस प्रकार प्रसंगानुसार ही वे उपदेश दिया करते थे। यदि उन पर ध्यान देकर नित्य उनका पालन किया जाए तो आध्यात्मिक ध्येय अधिक दूर न होगा । एक कहावत प्रचलित है कि - '' यदि मेरा श्रीहरि होगा तो वह मुझे चारपाई पर बैठे-बैठे ही भोजन पहुँचाएगा ।'' यह कहावत भोजन और वस्त्र के विषय में सत्य प्रतीत हो सकती है, परन्तु यदि कोई इस पर विश्वास कर आलस्यवश बैठा रहे तो वह आध्यात्मिक क्षेत्र में कुछ भी प्रगति न कर उलटे पतन के घोर अंधकार में मग्न हो जाएगा । इसलिए आत्मानुभूति-प्राप्ति के लिए प्रत्येक को अनवरत परिश्रम करना चाहिए और जितना प्रयत्न वह करेगा, उतना ही उसके लिए लाभप्रद भी होगा। बाबा ने कहा कि **''मैं तो सर्वव्यापी हूँ और विश्व के समस्त भूतों तथा चराचर में व्याप्त रहकर भी अनंत हूँ।''** केवल उनके भ्रम-निवारणार्थ ही जिनकी दृष्टि में वे साढे तीन हाथ के मानव थे, स्वयं सगुण रुप धारण कर अवतीर्ण हुए। इसलिए **जो भक्त अनन्य भाव से उनकी शरण**

आए और जिन्होंने दिन-रात ही उनका ध्यान किया, उन्हें उनसे अभिन्नता प्राप्त हुई, जिस प्रकार कि माधुर्य और मिश्री, लहर और समुद्र तथा नेत्र और कांति में अभिन्नता हुआ करती है। जो आवागमन के चक्र से मुक्त होना चाहें, वे शांत और स्थिर होकर अपना धार्मिक जीवन व्यतीत करें । दुःखदायी कटु शब्दों के प्रयोग से किसी को दुःखित न कर सदैव उत्तम कार्यों में संलग्न रहकर अपना कर्तव्य करते हुए अनन्य भाव से भयरहित हो उनकी शरण में जाना चाहिए। जो पूर्ण विश्वास से उनकी लीलाओं का श्रवण कर उनका मनन करेगा तथा अन्य वस्तुओं की चिंता त्याग देगा, उसे निस्संदेह ही आत्मानुभूति की प्राप्ति होगी। उन्होंने अनेकों से नाम का जपकर अपनी शरण में आने को कहा। जो यह जानने को उत्सुक थे कि ''मैं कौन हूँ?'' बाबा ने उन्हें भी लीलाएँ श्रवण और मनन करने का परामर्श दिया। किसी को भगवत् लीलाओं का श्रवण, किसी को भगवत्पादपूजन तो किसी को अध्यात्मरामायण व ज्ञानेश्वरी तथा धार्मिक ग्रन्थों का पठन एवं अध्ययन करने को कहा। अनेकों को अपने चरणों के समीप ही रखकर बहुतों को खंडोबा के मन्दिर में भेजा तथा अनेकों को विष्णु सहस्त्रनाम का जप करने व छान्दोग्य उपनिषद् तथा गीता का अध्ययन करने को कहा। उनके उपदेशों की कोई सीमा न थी। उन्होंने किन्हीं को प्रत्यक्ष और बहुतों को स्वप्न में दृष्टांत दिए। एक बार वे एक मदिरा-सेवी के स्वप्न में प्रगट होकर उसकी छाती पर चढ़ गए और जब उसने मद्यपान त्यागने की शपथ खाई,तभी उसे छोड़ा। किसी-किसी को मंत्र जैसे ''गुरुर्ब्रह्मा'' [१] आदि का अर्थ स्वप्न में समझाया तथा कुछ हठयोगियों को हठयोग छोड़ने की राय देकर चुपचाप बैठ धैर्य रखने को कहा। उनके सुगम पथ और विधि का वर्णन ही असम्भव है। साधारण सांसारिक व्यवहारों में उन्होंने अपने आचरण द्वारा ऐसे अनेकों उदाहरण प्रस्तुत किए, जिनमें से एक यहाँ नीचे दिया जाता है।

परिश्रम के लिए मजदूरी

एक दिन बाबा ने राधाकृष्णामाई के घर के समीप आकर एक सीढ़ी लाने को कहा। तब एक भक्त सीढ़ी ले आया और उनके बतलाए अनुसार वामन गोंदकर के घर पर उसे लगाया । वे उनके घर पर चढ़ गए और राधाकृष्णमाई के छप्पर पर से होकर दूसरे छोर से नीचे उतर आए। इसका अर्थ किसी की समझ में न आया। राधाकृष्णमाई इस समय ज्वर से काँप रही थीं। इसलिए हो सकता है कि उनका ज्वर दूर करने के लिए ही उन्होंने ऐसा कार्य किया हो। नीचे उतरने के पश्चात् शीघ्र ही उन्होंने सीढ़ी लाने वाले के दो रुपये पारिश्रमिक स्वरुप दिये। तब एक ने साहस कर उनसे पूछा कि इतने अधिक पैसे देना क्या अर्थ रखता है? उन्होंने कहा कि **किसी से बिना उसके परिश्रम का मूल्य चुकाए कार्य न कराना चाहिए और कार्य करनेवाले को उसके श्रम का शीघ्र निपटारा कर उदार ह्रदय से मजदूरी देनी चाहिए।**

।। श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।।

१. गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णो गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुस्साक्षात्परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।

।। अथ श्रीसाईसच्चरित।। ।। अध्याय २० ।।

विलक्षण समाधन

श्री काकासाहेब की नौकरानी द्वारा श्री. दासगणू की समस्या का विलक्षण समाधान, अव्दितीय शिक्षा पध्दती, ईशोपनिष्द् की शिक्षा.

श्री काकासाहेब की नौकरानी द्वारा श्री. दासगणू की समस्या किस प्रकार हल हुई, इसका वर्णन हेमाड़पंत ने इस अध्याय में किया है।

प्रारम्भ

श्रीसाई मूलतः निराकार थे, परन्तु भक्तों के प्रेमवश ही वे साकार रुप में प्रगट हुए। माया रुपी अभिनेत्री की सहायता से इस विश्व की बृहत् नाट्यशाला में उन्होंने एक महान् अभिनेता के सदृश अभिनय किया। आओ, श्री साईबाबा का ध्यान व स्मरण करें और फिर शिरड़ी चलकर ध्यानपूर्वक मध्याह्न की आरती के पश्चात् का कार्यक्रम देखें । जब आरती समाप्त हो गई, तब श्री साईबाबा ने मस्जिद से बाहर आकर एक किनारे खड़े होकर बड़ी करुणा तथा प्रेमपूर्वक भक्तों को उदी वितरण की । भक्त गण भी उनके समक्ष खड़े होकर उनकी ओर निहारकर चरण छूते और उदी वृष्टि का आनंद लेते थे। बाबा दोनों हाथों से भक्तों को उदी देते और अपने हाथ से उनके मस्तक पर उदी का टीका लगाते थे। बाबा के हृदय में भक्तों के प्रति असीम प्रेम था। वे भक्तों को प्रेम से सम्बोधित करते, '' ओ भाऊ ! अब जाओ, भोजन करो। अण्णा! तुम भी अपने घर जाओ। बापू! तू भी जा और भोजन कर ।'' इसी प्रकार वे प्रत्येक भक्त से सम्भाषण करते और उन्हें घर लौटाया करते थे। अहा ! क्या थे वे दिन, जो अस्त हुए तो ऐसे हुए कि फिर इस जीवन में कभी न मिलें ! यदि तुम कल्पना करो तो अभी भी उस आनन्द का अनुभव कर सकते हो। अब हम साई की आनन्दमयी मूर्त्ति का ध्यान कर नम्रता, प्रेम और आदरपूर्वक उनकी चरणवन्दना कर इस अध्याय की कथा आरम्भ करते हैं।

ईशोपनिषद्

एक समय श्री दासगणू ने ईशोपनिषद् पर टीका (ईशावास्य -भावार्थबोधिनी) लिखना प्रारम्भ किया। वर्णन करने से पूर्व इस उपनिषद् का संक्षिप्त परिचय भी देना आवश्यक है। इसमें वैदिक संहिता के मंत्रों का समावेश होने के कारण इसे ' मन्त्रोपनिषद्' भी कहते हैं और साथ ही इसमें यजुर्वेद के अंतिम (४० वें) अध्याय का अंश सम्मिलित होने के कारण यह वाजसनेयी (यजुः) संहितोपनिषद् के नाम से भी प्रसिद्ध है। वैदिक संहिता का समावेश होने के कारण इसे उन अन्य उपनिषदों की अपेक्षा श्रेष्ठतर माना जाता है, जो कि ब्राह्मण और आरण्यक (अर्थात् मन्त्र और धर्म) इन विषयों के विवरणात्मक ग्रंथ की कोटि में आते हैं। इतना ही नहीं, अन्य उपनिषद् तो केवल ईशोपनिषद् में वर्णित गूढ़ तत्वों पर ही आधारित टीकायें हैं। पण्डित सातवलेकर द्वारा रचित बृहदारण्यक उपनिषद् एवं ईशोपनिषद् की टीका प्रचलित टीकाओ में सबसे श्रेष्ठ मानी जाती है।

प्रोफेसर आर.डी. रानाड़े का कथन है कि ईशोपनिषद् एक लघु उपनिषद् होते हुए भी, उसमें अनेक विषयों का समावेश है, जो एक असाधारण अन्तर्दृष्टि प्रदान करता है। इसमें केवल १८ श्लोकों में ही आत्मतत्त्ववर्णन, एक आदर्श संत की जीवनी, जो आकर्षण और कष्टों के संसर्ग में भी अचल रहता है; कर्मयोग के सिद्धायन्तों का प्रतिबिम्ब, जिसका बाद में सूत्रीकरण किया गया; तथा ज्ञान और कर्त्तव्य के पोषक तत्वों का वर्णन है; जिसके अन्त में आदर्श, चामत्कारिक और आत्मासंबंधी गूढ़ तत्त्वों का संग्रह है।

इस उपनिषद् के संबंध में संक्षिप्त परिचय से स्पष्ट है कि इसका प्राकृत भाषा में वास्तविक अर्थ सहित अनुवाद करना कितना दुष्कर कार्य है। श्री. दासगणू ने ओवी छन्दों में अनुवाद तो किया, परन्तु उसके सार तत्वको

ग्रहण न कर सकने के कारण उन्हें अपने कार्य से सन्तोष न हुआ। इस प्रकार असंतुष्ट होकर उन्होंने कई अन्य विद्वानों से शंका-निवारणार्थ परामर्श और वादविवाद भी अधिक किया, परन्तु समस्या पूर्ववत् जटिल ही बनी रही और सन्तोषजनक अर्थ करने में कोई भी सफल न हो सका। इसी कारण श्री. दासगणू बहुत ही असंतुष्ट हुए।

केवल सद्‌गुरु ही अर्थ समझाने में समर्थ

यह उपनिषद् वेदों का महान् विवरणात्मक सार है। इस अस्त्र के प्रयोग से जन्म-मरण का बन्धन छिन्न भिन्न हो जाता है और मुक्ति की प्राप्ति होती है। अतः श्री. दासगणू को विचार आया कि जिसे आत्मसाक्षात्कार हो चुका हो, केवल वही इस उपनिषद् का वास्तविक अर्थ कर सकता है। जब कोई भी उनकी शंका का निवारण न कर सका तो उन्होंने शिरड़ी जाकर बाबा के दर्शन करने का निश्चय किया। जब उन्हें शिरड़ी जाने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ तो उन्होंने बाबा से भेंट की और चरण-वन्दना करने के पश्चात् उपनिषद् में आई कठिनाइयाँ उनके सामने रखकर उनसे हल करने की प्रार्थना की। श्री साईबाबा ने आशीर्वाद देकर कहा कि '' चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं । उसमें कठिनाई ही क्या है? जब तुम लौटोगे तो विलेपार्ला में काका दीक्षित की नौकरानी तुम्हारी शंका का निवारण कर देगी।'' उपस्थित लोगों ने जब ये वचन सुने तो वे सोचने लगे कि बाबा केवल विनोद ही कर रहे हैं और कहने लगे कि क्या एक अशिक्षित नौकरानी भी ऐसी जटिल समस्या हल कर सकती है? परन्तु दासगणू को तो पूर्ण विश्वास था कि बाबा के वचन कभी असत्य नहीं हो सकते, क्योंकि बाबा के वचन तो साक्षात् ब्रह्मवाक्य ही है।

काका की नौकरानी

बाबा के वचनों में पूर्ण विश्वास कर वे शिरड़ी से विलेपार्ला (बम्बई के उपनगर) में पहुँचकर काका दीक्षित के यहाँ ठहरे। दूसरे दिन दासगणू सुबह की मीठी नींद का आनन्दी ले रहे थे, तभी उन्हें एक निर्धन बालिका के सुन्दर गीत का स्पष्ट और मधुर स्वर सुनाई पड़ा। गीत का मुख्य विषय था- एक लाल रंग की साड़ी। वह कितनी सुन्दर थी, उसका जरी का आँचल कितना बढ़िया था, उसके छोर और किनारें कितनी सुन्दर थी, इत्यादि। उन्हें वह गीत अति रुचिकर प्रतीत हुआ। इस कारण उन्होंने बाहर आकर देखा कि यह गीत एक बालिका-नाम्या की बहन-जो काकासाहेब दीक्षित की नौकरानी है- गा रही है। बालिका बर्त्तन माँज रही थी और केवल एक फटे कपड़े से तन ढँके हुए थी। इतनी दरिद्री -परिस्थिति में भी उसकी प्रसन्न-मुद्रा देखकर श्री. दासगणू को दया आ गई और दूसरे दिन श्री. दासगणू ने श्री. एम्. व्ही. प्रधान से उस बालिका को एक उत्तम साड़ी देने की प्रार्थना की, जब रावबहादुर एम. व्ही. प्रधान ने उस बालिका को एक धोती का जोड़ा दिया, तब एक क्षुधापीड़ित व्यक्ति को जैसे भाग्यवश मधुर भोजन प्राप्त होने पर प्रसन्नता होती है, वैसे ही उसकी प्रसन्नता का पारावार न रहा। दूसरे दिन उसने नई साड़ी पहनी और अत्यन्त हर्षित होकर सानन्द नाचने-कुदने लगी एवं अन्य बालिकाओं के साथ वह फुगड़ी खेलने में मग्न रही। अगले दिन उसने नई साडी सँभाल कर सन्दूक में रख दी और पूर्ववत् फटे पुराने कपड़े पहनकर आई, परन्तु फिर भी पिछले दिन के समान ही प्रसन्न दिखाई दी। यह देखकर श्री. दासगणू की दया आश्चर्य में परिणत हो गई। उनकी ऐसी धारणा थी कि निर्धन होने के ही कारण उसे फटे चिथड़े कपड़े पहनने पड़ते हैं, परन्तु अब तो उसके पास नई साड़ी थी, जिसे उसने सँभाल कर रख लिया और फटे कपड़े पहनकर भी उसी गर्व और आनन्द का अनुभव करती रही। उसके मुखपर दुःख या निराशा का कोई निशान नहीं रहा। इस प्रकार उन्हें अनुभव हुआ कि दुःख और सुख का अनुभव केवल मानसिक स्थिति पर निर्भर है। इस घटना पर गूढ़ विचार करने के पश्चात वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि भगवान ने जो कुछ दिया है, उसी में समाधन वृत्ति रखनी चाहिये और यह निश्चयपूर्वक समझना चाहिए कि वह सब चराचर में व्याप्त है और जो कुछ भी स्थिति उसकी दया से अपने को प्राप्त है, वह अपने लिये अवश्य ही लाभप्रद होगी । इस विशिष्ट घटना में बालिका की निर्धनावस्था, उसके फटे पुराने कपड़े और नई साड़ी देने वाला तथा उसकी स्वीकृति देने वाला यह सब ईश्वर द्वारा ही प्रेरित कार्य था। श्री. दासगणू को उपनिषद् के पाठ की प्रत्यक्ष शिक्षा मिल गई अर्थात् जो कुछ अपने पास है, उसी में समाधानवृत्ति माननी चाहिए। सार यह है कि जो कुछ होता है, सब उसी की इच्छा से नियंत्रित है, अतः उसी में संतुष्ट रहने में हमारा कल्याण है।

अद्वितीय शिक्षापद्धति

उपर्युक्त घटना से पाठकों को विदित होगा कि बाबा की पद्धति अद्वितीय और अपूर्व थी। बाबा शिरड़ी के बाहर कभी नहीं गए, परन्तु फिर भी उन्होंने किसी को मच्छिन्द्रगढ़ किसी को कोल्हापुर या सोलापुर साधनाओं के लिऐ भेजा। किसी को दिन में और किसी को रात्रि में दर्शन दिए। किसी को काम करते हुए, तो किसी को निद्रावस्था में दर्शन दिये और उनकी इच्छाएँ पूर्ण कीं। भक्तों को शिक्षा देने के लिये उन्होंने कौन कौन-सी युक्तियाँ काम में लाईं, उसका वर्णन करना असम्भव है। इस विशिष्ट घटना में उन्होंने श्री. दासगणू को विलेपार्ला भेज कर

वहाँ उनकी नौकरानी द्वारा समस्या हल कराई। जिनका ऐसा विचार हो कि श्री. दासगणू को बाहर भेजने की आवश्यकता ही क्या थी, क्या वे स्वयं नहीं समझा सकते थे? उनसे मेरा कहना है कि बाबाने उचित मार्ग ही अपनाया। अन्यथा श्री. दासगणू किस प्रकार एक अमूल्य शिक्षा उस निर्धन नौकरानी और उसकी साड़ी द्वारा प्राप्त करते, जिसकी रचना स्वयं साई ने की थी।

ईशोपनिषद् की शिक्षा

ईशोपनिषद् की मुंख्य देन नीति-शास्त्र सम्बधी उपदेश है। हर्ष की बात है कि इस उपनिषद् की नीति निश्चित रुप से आध्यात्मिक विषयों पर आधारित है, जिसका उसमें बृहत् रुप से वर्णन किया गया है। उपनिषद् का प्रारम्भ ही यहीं से होता है कि समस्त वस्तुएँ ईश्वर से ओत-प्रोत हैं। यह आत्मविषयक स्थिति का भी एक उपसिद्धान्त है और जो नीतिसंबंधी उपदेश उससे ग्रहण करने योग्य है, वह यह है कि जो कुछ ईशकृपा से प्राप्त है, उसमें ही आनन्द मानना चाहिए और दृढ़ भावना रखनी चाहिए कि ईश्वर ही सर्वशक्तिमान् है और इसलिए जो कुछ उसने दिया है, वही हमारे लिए उपयुक्त है। यह भी उसमें प्राकृतिक रुप से वर्णित है कि पराये धन की तृष्णा की प्रवृत्ति को रोकना चाहिए। सारांश यह है कि अपने पास जो कुछ है, उसी में सन्तुष्ट रहना, क्योंकि यही ईश्वरेच्छा है। चरित्र सम्बंधी द्वितीय उपदेश यह है कि कर्तव्य को ईश्वरेच्छा समझते हुए जीवन व्यतीत करना चाहिए, विशेषतः उन कर्मो को जिनको शास्त्र में वर्णित किया गया है। इस विषय में उपनिषद् का कहना है कि आलस्य से आत्मा का पतन हो जाता है और इस प्रकार निरपेक्ष कर्म करते हुए जीवन व्यतीत करने वाला ही अकर्मण्यता के आदर्श को प्राप्त कर सकता है। अन्त में कहा है कि जो सब प्राणियों को अपना ही आत्मस्वरुप समझता है तथा जिसे समस्त प्राणी और पदार्थ आत्मस्वरुप हो चुके हैं, उसे मोह कैसे उत्पन्न हो सकता है? ऐसे व्यक्ति को दुःख का कोई कारण नहीं हो सकता।

सर्वभूतों में आत्मदर्शन न कर सकने के कारण भिन्न-भिन्न प्रकार के शोक, मोह और दुःखों की वृद्धि होती है। जिसके लिए सब वस्तुएँ आत्मस्वरुप बन गई हों, वह अन्य सामान्य मनुष्यों का छिद्रान्वेषण क्यों करे ?

।। श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।।

(१) श्री . व्ही.एच् .ठाकूर (२) श्री अनंतराव पाटणकर और (३) पंढरपुर के वकील कथाएँ।

इस अध्याय में हेमाड़पंत ने श्री . विनायक हरिश्चंद्र ठाकुर, बी.ए., श्री. अनंतराव पाटणकर, पुणे निवासी तथा पंढरपुर के एक वकील की कथाओं का वर्णन किया है। ये सब कथाएँ अति मनोरंजक हैं। यदि इनका सारांश मननपूर्वक ग्रहण कर उन्हें आचरण में लाया जाए तो आध्यात्मिक पंथ पर पाठकगण अवश्य अग्रसर होंगे।

प्रारम्भ

यह एक साधारण -सा नियम है कि गत जन्मों के शुभ कर्मों के फलस्वरुप ही हमें संतों का सान्निध्य और उनकी कृपा प्राप्त होती है। उदाहरणार्थ हेमाड़पंत स्वयं अपनी घटना प्रस्तुत करते हैं। वे अनेक वर्षो तक बम्बई के उपनगर बांद्रा के स्थानीय न्यायाधीश रहे। पीर मौलाना नामक एक मुस्लिम संत भी वहीं निवास करते थे। उनके दर्शनार्थ अनेक हिन्दू, पारसी और अन्य धर्मावलंबी वहाँ जाया करते थे। उनके मुजावर (पुजारी) ने हेमाड़पंत से भी उनका दर्शन करने के लिए बहुत आग्रह किया, परन्तु किसी न किसी कारण वश उनकी भेंट उनसे न हो सकी। अनेक वर्षो के उपरान्त जब उनका शुभ काल आया तब वे शिरड़ी पहुँचे और बाबा के दरबार में जाकर स्थायी रुप से सम्मिलित हो गए। भाग्यहीनों को संतसमागम की प्राप्ति कैसे हो सकती है? केवल वे ही सौभाग्यशाली हैं, जिन्हें ऐसा अवसर प्राप्त हो ।

संतों द्वारा लोकशिक्षा

संतों द्वारा लोकशिक्षा का कार्य चिरकाल से ही इस विश्व में संपादित होता आया है। अनेकों संत भिन्न -भिन्न स्थानों पर किसी निश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिए स्वयं प्रगट होते हैं। यद्यपि उनका कार्यस्थल भिन्न होता है, परन्तु वे सब पूर्णतः एक ही हैं। वे सब उस सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की संचालनशक्ति के अंतर्गत एक ही लहर में कार्य करते है। उन्हें प्रत्येक के कार्य का परस्पर ज्ञान रहता है और आवश्यकतानुसार परस्पर कमी की पूर्ति करते हैं, जो निम्नलिखित घटना द्वारा स्पष्ट है।

श्री. ठाकुर

श्री. व्ही.एच्ं .ठाकुर, बी.ए. रेव्हेन्यू विभाग में एक कर्मचारी थे। वे एक समय भूमिमापक दल के साथ कार्य करते हुए बेलगाँव के समीप वड़गाँव नामक ग्राम में पहुँचे। वहाँ उन्होंने एक कानड़ी संत पुरुष (आप्पा) के दर्शन कर उनकी चरण वन्दना की। वे अपने भक्तों को निश्चलदासकृत ''विचार-सागर'' नामक ग्रंथ (जो वेदान्त के विषय में है) का भावार्थ समझा रहे थे। जब श्री. ठाकुर उनसे विदाई लेने लगे तो उन्होंने कहा, तुम्हें इस ग्रंथ का अध्ययन अवश्य करना चाहिए और ऐसा करने से तुम्हारी इच्छाएँ पूर्ण हो जाएगी तथा जब कार्य करते-करते कालान्तर में तुम उत्तर दिशा में जाओगे तो सौभाग्यवश तुम्हारी एक महान् संत से भेंट होगी, जो मार्ग-प्रदर्शन कर तुम्हारे हृदय को शांति और सुख प्रदान करेंगे।

बाद में उनका स्थानांतरण जुन्नर को हो गया, जहाँ कि नाणेघाट पार करके जाना पड़ता था। यह घाट अधिक गहरा और पार करने में कठिन था। इसलिए उन्हें भैंसे की सवारी कर घाट पार करना पड़ा, जो उन्हें अधिक असुविधाजनक तथा कष्टकर प्रतीत हुआ। उसके पश्चात् ही उनका स्थानांतरण कल्याण में एक उच्च पद पर हो गया और वहाँ उनका नानासाहेब चाँदोरकर से परिचय हो गया उनके द्वारा उन्हें श्री साईबाबा के संबंध में बहुत कुछ ज्ञात हुआ और उन्हें उनके दर्शन की तीव्र उत्कण्ठा हुई । दूसरे दिन ही नानासाहेब शिरड़ी को प्रस्थान कर रहे थे। उन्होंने श्री. ठाकुर से भी अपने साथ चलने का आग्रह किया। ठाणे के दीवानी-न्यायालय में एक मुकदमे के संबंध में उनकी उपस्थिति आवश्यक होने के कारण वे उनके साथ न जा सके। इस कारण नानासाहेब अकेले ही रवाना हो गए। ठाणे पहुँचने पर मुकदमे की तारीख आगे के लिए बढ गई। इसलिए उन्हें नानासाहेब का साथ न

देने पर पश्चात्ताप हुआ। फिर वे शिरड़ी पहुँचे, तब वहाँ उन्हें ज्ञात हुआ कि नानासाहेब पिछले दिन ही यहाँ से चले गए हैं। वे अपने कुछ मित्रों के साथ, जो उन्हें वहीं मिल गए थे, श्री साईबाबा के दर्शन को गए। उन्होंने बाबा के दर्शन किए और उनके चरणकमलों की आराधना कर अत्यन्त हर्षित हुए। उन्हें रोमांच हो आया और उनकी आँखों से अश्रुधाराएँ प्रवाहित होने लगीं। त्रिकालदर्शी बाबा ने उनसे कहा- इस स्थान का मार्ग इतना सुगम नहीं, जितना कि कानड़ी संत अप्पा के उपदेश या नाणेघाट पर भैंसे की सवारी थी। आध्यात्मिक पथ पर चलने के लिए तुम्हें घोर परिश्रम करना पड़ेगा, क्योंकि वह अत्यन्त कठिन पथ है। जब श्री. ठाकूर ने हेतुगर्भ शब्द सुने, जिनका अर्थ उनके अतिरिक्त और कोई न जानता था तो उनके हर्ष का पारावार न रहा और उन्हें कानड़ी संत के वचनों की स्मृति हो आई। तब उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर बाबा के चरणों पर अपना मस्तक रखा और उनसे प्रार्थना की कि '' प्रभु मुझ पर कृपा करो और इस अनाथ को अपने चरणकमलों की शीतलछाया में स्थान दो।'' तब बाबा बोले, '' जो कुछ अप्पा ने कहा, वह सत्य था। उसका अभ्यास कर उसके अनुसार ही तूम्हें आचरण करना चाहिए। व्यर्थ बैठने से कुछ लाभ न होगा। जो कुछ तुम पठन करते हो, उसको आचरण में भी लाओ, अन्यथा उसका उपयोग ही क्या? गुरु कृपा के बिना ग्रंथावलोकन तथा आत्मानुभूति निरर्थक ही है।'' श्री. ठाकुर ने अभी तक केवल ' विचार सागर' ग्रन्थ में सैद्धांतिक प्रकरण ही पढ़ा था, परन्तु उसकी प्रत्यक्ष व्यवहार प्रणाली तो उन्हें शिरड़ी में ही ज्ञात हुई। एक दूसरी कथा भी इस सत्य का और अधिक सशक्त प्रमाण है।

श्री. अनंतराव पाटणकर

पूना के एक महाशय, श्री. अनंतराव पाटणकर श्री साईबाबा के दर्शन के इच्छुक थे। उन्होंने शिरडी आकर बाबा के दर्शन किए । दर्शनों से उनके नेत्र शीतल हो गए और वे अति प्रसन्न हुए। उन्होंने बाबा के श्री चरण छुए और यथायोग्य पूजन करने के उपरान्त बोले, ''मैने बहुत कुछ पठन किया। वेद, वेदांत और उपनिषद्‌ों का भी अध्ययन किया तथा अन्य पुराण भी श्रवण किए, फिर भी मुझे शान्ति न मिल सकी। इसलिए मेरा पठन व्यर्थ ही सिद्ध हुआ। एक निरा अज्ञानी भक्त मुझसे कहीं श्रेष्ठ है। जब तक मन को शांति नहीं मिलती , तब तक ग्रन्थावलोकन व्यर्थ ही है। मैंने ऐसा सुना है कि आप केवल अपनी दृष्टि मात्र से और विनोदपूर्ण वचनों द्वारा दूसरों के मन को सरलतापूर्वक शान्ति प्रदान कर देते हैं। यही सुनकर मैं भी यहाँ आया हूँ। कृपा कर मुझ दास को भी आशीर्वाद दीजिए।'' तब बाबा ने निम्नलिखित कथा कहीः-

घोड़ी की लीद के नौ गोले (नवधा भक्ति)

“एक समय एक सौदागर यहाँ आया। उसके सम्मुख ही एक घोड़ी ने लीद की। जिज्ञासु सौदागर ने अपनी धोती का एक छोर बिछाकर उसमें लीद के नौ गोले रख लिए और इस प्रकार उसके चित्त को शांति प्राप्त हुई ।” श्री पाटणकर इस कथा का कुछ भी अर्थ न समझ सके इसलिए उन्होंने श्री. गणेश दामोदर उपनाम दादा केलकर से अर्थ समझाने की प्रार्थना की और पूछा कि '' बाबा के कहने का अभिप्राय क्या है?'' वे बोले कि '' जो कुछ बाबा कहते हैं, उसे मैं स्वयं भी अच्छी तरह नहीं समझ सकता, परंतु उनकी प्रेरणा से ही मैं जो कुछ समझ सका हूँ, वह तुम से कहता हूँ। घोड़ी है ईश-कृपा, और नौ एकत्रित गोले हैं नवविधा १ भक्ति -यथा (१) श्रवण (२) कीर्त्तन (३) नामस्मरण (४) पादसेवन (५) अर्चन (६) वन्दन (७) दास्य या दासता (८) सख्यता तथा (९) आत्मनिवेदन। ये भक्ति के नौ प्रकार हैं। इनमें से यदि एक को भी सत्यता से कार्यरुप में लाया जाए तो भगवान श्रीहरि अति प्रसन्न होकर भक्त के घर प्रगट हो जाएँगे। समस्त साधनायें अर्थात् जप, तप, योगाभ्यास तथा वेदों के पठन-पाठन में जब तक भक्ति का सम्पुट न हो, बिलकुल शुष्क ही हैं। वेदज्ञानी या ब्रह्मज्ञानी की कीर्ति भक्तिभाव के अभाव में निरर्थक है। आवश्यकता हैं तो केवल पूर्ण भक्ति की । अपने को भी उसी सौदागर के समान ही जानकर और व्यग्रता तथा उत्सुकतापूर्वक सत्य की खोज कर नौ प्रकार की भक्ति को प्राप्त करो। तब कहीं तुम्हें दृढ़ता तथा मानसिक शांति प्राप्त होगी । ''

१. श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् । अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यम् आत्मनिवेदनम् ।।

दूसरे दिन जब श्री. पाटणकर बाबा को प्रणाम करने गये तो बाबा ने पूछा कि '' क्या तुमने लीद के नौ गोले एकत्रित किए?'' उन्होंने कहा कि '' मैं अनाश्रित हूँ। आपकी कृपा के बिना उन्हें सरलतापूर्वक एकत्रित करना संभव नहीं है। '' बाबा ने उन्हें आशीर्वाद देकर सांत्वना दी कि '' तुम्हें सुख और शांति प्राप्त हो जाएगी'', जिसे सुनकर श्री. पाटणकर के हर्ष का पारावार न रहा।

पंढरपुर के वकील

भक्तो के दोष दूर कर, उन्हें उचित पथ पर ला देने की बाबा की त्रिकालज्ञता की एक छोटी - सी कथा का वर्णन कर इस अध्याय को समाप्त करेंगे । एक समय पंढरपुर से एक वकील शिरड़ी आए। उन्होंने बाबा के दर्शन कर उन्हें प्रणाम किया तथा कुछ दक्षिणा भेंट देकर एक कोने में बैठे वार्त्तालाप सुनने लगे । बाबा उनकी ओर देख कर कहने लगे कि '' लोग कितने धूर्त्त हैं, जो यहाँ आकर चरणों पर गिरते और दक्षिणा देते हैं, परंतु भीतर से पीठ पीछे गालियाँ देते रहते हैं। कितने आश्चर्य की बात है न ?'' यह पगड़ी वकील के सिर पर ठीक बैठी और उन्हें उसे पहननी पड़ी। कोई भी इन शब्दों का अर्थ न समझ सका। परन्तु वकील साहब इसका गूढ़ार्थ समझ गए, फिंर भी वे सिर झुकाकर बैठे ही रहे। वाड़े को लौटकर वकील साहब ने काकासाहेब दीक्षित को बतलाया कि बाबा ने जो कुछ उदाहरण दिया और जो मेरी ही ओर लक्ष्य कर कहा गया था, वह सत्य है। वह केवल चेतावनी ही थी कि मुझे किसी की निन्दा न करनी चाहिए । एक समय जब उपन्यासाधीश श्री. नूलकर स्वास्थ्य लाभ करने के लिए पंढरपुर से शिरड़ी आकर ठहरे तो बाररुम में उनके संबध में चर्चा हो रही थी। विवाद का विषय था कि जिस व्याधि से उपन्यायाधीश अस्वस्थ हैं, क्या बिना औषधि सेवन किए केवल साईबाबा की शरण में जाने से ही उससे छुटकारा पाना सम्भव है? और क्या श्री. नूलकर सदृश एक शिक्षित व्यक्ति को इस मार्ग का अवलम्बन करना उचित है? उस समय श्री. नूलकर का और साथ ही श्री साईबाबा का भी बहुत उपहास किया गया। मैंने भी इस आलोचना में हाथ बँटाया था। श्री साईबाबा ने मेरे उसी दूषित आचरण पर प्रकाश डाला है। यह मेरे लिए उपहास नहीं, वरन् एक उपकार है, जो केवल परामर्श है कि मुझे किसी की निन्दा न करनी चाहिए और न ही दूसरों के कार्यों में विघ्न डालना चाहिए । ''

शिरड़ी और पंढरपुर में लगभग ३०० मील का अन्तर है। फिर भी बाबा ने अपनी सर्वज्ञता द्वारा जान लिया कि बाररुम में क्या चल रहा था? मार्ग में आने वाली नदियाँ, जंगल और पहाड़ उनकी सर्वज्ञता के लिए रोड़ा न थे। वे सबके हृदय की गुह्य बात जान लेते थे और उनसे कुछ छिपा न था। समीपस्थ या दूरस्थ प्रत्येक वस्तु उन्हें दिन के प्रकाश के समान जाज्वल्यमान थी तथा उनकी सर्वव्यापक दृष्टि से ओझल न थी। इस घटना से वकीलसाहब को शिक्षा मिली कि कभी किसी का छिद्रान्वेषण एवं निंदा नहीं करनी चाहिए ।

यह कथा केवल वकीलसाहब को ही नहीं, वरन् सबको शिक्षाप्रद है। श्री साईबाबा की महानता कोई न आँक सका और न ही उनकी अद्‌भुत लीलाओं का अंत ही पा सका । उनकी जीवनी भी तदनुरुप ही है, क्योंकि वे परब्रह्मस्वरुप हैं।

।। श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु ।।

।। अथ श्रीसाईसच्चरित।। ।। अध्याय २२ ।।

सर्प - विष से रक्षा

(१) श्री. बालासाहेब मिरीकर (२) श्री. बापूसाहेब बूटी (३) श्री. अमीर शक्कर (४) श्री. हेमाड़पंत।
(५) बाबा के विचार

बाबा की सर्प मारने पर सलाह

प्रस्तावना

श्री साईबाबा का ध्यान कैसे किया जाए ? उस सर्वशक्तिमान् की प्रकृति अगाध है, जिसका वर्णन करने में वेद और सहस्त्रमुखी शेषनाग भी अपने को असमर्थ पाते हैं। भक्तों की रुचि स्वरुप वर्णन से नहीं। उनकी तो दृढ़ धारणा है कि आनन्द की प्राप्ति केवल उनके श्रीचरणों से ही संभव है। उनके चरणकमलों के ध्यान के अतिरिक्त उन्हें अपने जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य की प्राप्ति का अन्य मार्ग विदित ही नहीं । हेमाड़पंत भक्त और ध्यान का जो एक अति सरल मार्ग सुझाते हैं, वह यह हैः-

कृष्ण पक्षके आरम्भ होने पर चन्द्र-कलाएँ दिन प्रतिदिन घटती जाती हैं तथा उनका प्रकाश भी क्रमशः क्षीण होता जाता है और अन्त में अमावस्या के दिन चन्द्रमाके पूर्ण विलीन रहने पर चारों ओर निशा का भयंकर अँधेरा छा जाता है, परन्तु जब शुक्ल पक्ष का प्रारंभ होता है तो लोग चन्द्र-दर्शन के लिए अति उत्सुक हो जाते हैं। इसके बाद द्वितीया को जब चन्द्र अधिक स्पष्ट गोचर नहीं होता, तब लोगों को वृक्ष की दो शाखाओं के बीच से चन्द्रदर्शन के लिए कहा जाता है और जब इन शाखाओं के बीच उत्सुकता और ध्यानपूर्वक देखने का प्रयत्न किया जाता है तो दूर क्षितिज पर छोटी -सी चन्द्र रेखा के दृष्टिगोचर होते ही मन अति प्रफुल्लित हो जाता है। इसी सिद्धांत का अनुमोदन करते हुए हमें बाबा के श्री दर्शन का भी प्रयन्त करना चाहिए। बाबा के चित्र की ओर देखो। अहा, कितना सुन्दर है? वे पैर मोड़ कर बैठे हैं और दाहिना पैर बाएँ घुटने पर रखा गया है। बाएँ हाथ की अँगुलियाँ दाहिने चरण पर फैली हुई हैं। दाहिने पैर के अँगूठे पर तर्जनी और मध्यमा अँगुलियाँ फैली हुई हैं। इस आकृति से बाबा समझा रहे हैं कि यदि तुम्हें मेरे आध्यात्मिक दर्शन करने की इच्छा हो तो अभिमानशून्य और विनम्र होकर उक्त दो अँगुलियों के बीच से मेरे चरण के अँगूठे का ध्यान करो । तब कहीं तुम उस सत्य स्वरुप का दर्शन करने में सफल हो सकोगे । भक्ति प्राप्त करने का यह सब से सुगम पंथ है।

अब एक क्षण श्री साईबाबा की जीवनी का भी अवलोकन करें। साईबाबा के निवास से ही शिरड़ी तीर्थस्थल बन गया है। चारों ओर के लोगों की वहाँ भीड़ प्रति दिन बढ़ने लगी है तथा धनी और निर्धन सभी को किसी न किसी रुप में लाभ पहुँच रहा है। बाबा के असीम प्रेम, उनके अद्भुत ज्ञानभंडार और सर्वव्यापकता का वर्णन करने का सामर्थ्य किसे है? धन्य तो वही है, जिसे कुछ अनुभव हो चुका है। कभी-कभी वे ब्रह्म में निमग्न रहने के कारण दीर्घ मौन धारण कर लिया करते थे । कभी-कभी वे चैतन्यघन और आनन्द-मूर्त्ति बन भक्तों से घिरे हुए रहते थे। कभी दृष्टान्त देते तो कभी हास्य-विनोद किया करते थे। कभी सरल चित्त रहते तो कभी क्रुद्ध भी हो जाया करते थे। कभी संक्षिप्त और कभी घंटों प्रवचन किया करते थे। लोगों की आवश्यकतानुसार ही भिन्न-भिन्न प्रकार के उपदेश देते थे। उनकी जीवनी और अगाध ज्ञान वाचा से परे था । उनके मुखमंडल के अवलोकन, वार्त्तालाप करने और लीलाएँ सुनने की इच्छाएँ सदा अतृप्त ही बनी रहीं। फिर भी हम फूले न समाते थे। जलवृष्टि के कणों की गणना की जा सकती है, वायु को भी चर्मकी थैली में संचित किया जा सकता है, परन्तु बाबा की लीलाओं का कोई भी अंत न पा सका। अब उन लीलाओं में से एक लीला का यहाँ भी दर्शन करें । भक्तों के संकटों के घटित होने के पूर्व ही बाबा उपयुक्त अवसर पर किस प्रकार उनकी रक्षा किया करते थे? श्री. बालासाहेब मिरीकर, जो सरदार

काकासाहेब के सुपुत्र तथा कोपरगाँव के मामलतदार थे, एक बार दौरे पर चितली जा रहे थे। तभी मार्ग में, वे साईबाबा के दर्शनार्थ शिरड़ी पधारे। उन्होंने मस्जिद में जाकर बाबा की चरण-वन्दना की और सदैव की भाँति स्वास्थ्य तथा अन्य विषयों पर चर्चा की । बाबा ने उन्हें चेतावनी देकर कहा कि '' क्या तुम अपनी द्वारकामाई को जानते हो?'' श्री. बालासाहेब इसका कुछ अर्थ न समझ सके, इसीलिए वे चुप ही रहे। बाबा ने उनसे पुनः कहा कि ''जहाँ तुम बैठे हो, वही द्वारकामाई है । जो उसकी गोदं में बैठता है, वह अपने बच्चों के समस्त दुःखों और कठिनाइयों को दूर कर देती है। यह मस्जिद माई परम दयालु है। सरल ह्रदय भक्तों की तो वह माँ है और संकटों में उनकी रक्षा अवश्य करेगी। जो उसकी गोद में एक बार बैठता है, उसके समस्त कष्ट दूर हो जाते हैं। जो उसकी छत्रछाया में विश्राम करता है, उसे आनन्द और सुख की प्राप्ति होती है।'' तदुपरांत बाबा ने उन्हें उदी देकर अपना वरद हस्त उनके मस्तक पर रख कर आशीर्वाद दिया।

जब श्री. बालासाहेब जाने के लिए उठ खड़े हुए तो बाबा बोले कि '' क्या तुम लम्बे बाबा (अर्थात् सर्प) से परिचित हो?'' और अपनी बाई मुट्ठी बन्द कर उसे दाहिने हाथ की कुहनी के पास ले जाकर दाहिने हाथ को साँप के सदृश हिलाकर बोले कि '' वह अति भयंकर है, परन्तु द्वारकामाई के लालों का वह कर ही क्या सकता है? जब स्वयं ही द्वारकामाई उनकी रक्षा करने वाली है तो सर्प की सामर्थ्य ही क्या है?'' वहाँ उपस्थित लोग इसका अर्थ तथा मिरीकर को इस प्रकार चेतावनी देने का कारण जानना चाहते थे, परन्तु पूछने का साहस किसी में भी न होता था। बाबा ने शामा को बुलाया और बालासाहेब के साथ जाकर चितली यात्रा का आनन्द लेने की आज्ञा दी। तब शामा ने जाकर बाबा का आदेश बालासाहेब को सुनाया। वे बोले कि मार्ग में असुविधाएँ बहुत हैं, अतः आपको व्यर्थ ही कष्ट उठाना उचित नहीं है। बालासाहेब ने जो कुछ कहा, वह शामा ने बाबा को बताया। बाबा बोले कि ''अच्छा ठीक है, न जाओ। सदैव उचित अर्थ ग्रहणकर श्रेष्ठ कार्य ही करना चाहिए। जो कुछ होने वाला है, सो तो होकर ही रहेगा।''

बालासाहेब ने पुनः विचार कर शामा को अपने साथ चलने के लिए कहा। तब शामा पुनः बाबा की आज्ञा प्राप्त कर बालासाहेब के साथ ताँगे में रवाना हो गए। वे नौ बजे चितली पहुँचे और मारुति मंदिर में जाकर ठहरे। आफिस के कर्मचारीगण अभी नहीं आए थे, इस कारण वे यहाँ-वहाँ की चर्चाएँ करने लगे। बालासाहेब दैनिक पत्र पढ़ते हुए चटाई पर शांतिपूर्वक बैठे थे। उनकी धोती का ऊपरी सिरा कमर पर पड़ा हुआ था और उसी के एक भाग पर एक सर्प बैठा हुआ था। किसी का भी ध्यान उधर न था। वह सी-सी करता हुआ आगे रेंगने लगा। यह आवाज सुनकर चपरासी दौड़ा और लालटेन ले आया। सर्प को देखकर वह 'साँप साँप' कहकर उच्च स्वर में चिल्लाने लगा। तब बालासाहेब अति भयभीत होकर काँपने लगे। शामा को भी आश्र्चर्य हुआ । तब वे तथा अन्य व्यक्ति वहाँ से धीरे से हटे और अपने हाथ में लाठियाँ ले लीं। सर्प धीरे-धीरे कमर से नीचे उतर आया। तब लोगों ने उसका तत्काल ही प्राणांत कर दिया । जिस संकट की बाबा ने भविष्यवाणी की थी, वह टल गया और साई-चरणों में बालासाहेब का प्रेम दृढ़ हो गया।

बापूसाहेब बूटी

एक दिन महान् ज्योतिषी श्री. नानासाहेब डेंगले ने बापूसाहेब बूटी से (जो उस समय शिरड़ी में ही थे) कहा '' आज का दिन तुम्हारे लिए अत्यन्त अशुभ है और तुम्हारे जीवन को भयप्रद है। '' यह सुनकर बापूसाहेब बड़े अधीर हो उठे। जब सदैव की भाँति वे बाबा के दर्शन करने गए तो वे बोले कि ''ये नाना क्या कहते हैं? वे तुम्हारी मृत्यु की भविष्यवाणी कर रहे हैं, परन्तु तुम्हें भयभीत होने की किंचित् मात्र भी आवश्यकता नहीं है।'' इनसे दृढ़तापूर्वक कह दो कि अच्छा देखें काल मेरा किस भाँति अपहरण करता है।'' जब संध्यासमय बापू अपने शौच-गृह में गए तो वहाँ उन्हें एक सर्प दिखाई दिया । उनके नौकर ने भी सर्प को देख लिया और उसे मारने को एक पत्थर उठाया? बापूसाहेब ने एक लम्बी लकड़ी मँगवाई, परन्तु लकड़ी आने से पूर्व ही वह साँप दूरी पर रेंगता हुआ दिखाई दिया और तुरन्त ही दृष्टि से ओझल हो गया । बापूसाहेब को बाबा के अभयपूर्ण वचनों का स्मरण हुआ और बड़ा ही हर्ष हुआ।

अमीर शक्कर

अमीर शक्कर कोरले गाँव का निवासी था, जो कोपरगाँव तालुके में है। वह जाति का कसाई था और बान्द्रा में दलाली का धंधा किया करता था। वह प्रसिद्ध व्यक्तियों में से एक था। एक बार वह गठिया रोग से अधिक कष्ट पा रहा था। जब उसे खुदा की स्मृति आई, तब काम-धंधा छोड़कर वह शिरड़ी आया और बाबा से रोग-निवृत्ति की प्रार्थना करने लगा। तब बाबा ने उसे चावड़ी में रहने की आज्ञा दे दी । चावड़ी उस समय एक अस्वास्थ्यकारक स्थान होने के कारण इस प्रकार के रोगियों के लिए सर्वथा ही अयोग्य था । गाँव का अन्य कोई भी स्थान उसके लिए उत्तम होता, परन्तु बाबा के शब्द तो निर्णयात्मक तथा मुख्य औषधिस्वरुप थे। बाबा ने उसे मस्जिद में न आने दिया और चावड़ी में ही रहने की आज्ञा दी। वहाँ उसे बहुत लाभ हुआ। बाबा प्रातः और सायंकाल चावड़ी से निकलते थे तथा एक दिन के अंतर से जुलूस के साथ वहाँ आते और वहीं विश्राम किया करते थे । इसलिए अमीर को बाबा का सान्निध्य सरलतापूर्वक प्राप्त हो जाया करता था। अमीर वहाँ पूरे नौ मास रहा । जब किसी अन्य कारणवश उसका मन उस स्थान से ऊब गया, तब एक रात्रि में वह चोरी से उस स्थान को छोड़कर कोपरगाँव की धर्मशाला में जा ठहरा। वहाँ पहुँचकर उसने वहाँ एक फकीर को मरते हुए देखा, जो पानी माँग रहा था। अमीर ने उसे पानी दिया, जिसे पीते ही उसका देहांत हो गया। अब अमीर किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो गया। उसे विचार आया कि अधिकारियों को इसकी सूचना दे दूँ तो मैं ही मृत्यु के लिए उत्तरदायी ठहराया जाऊँगा और प्रथम सूचना पहुँचाने के नाते कि मुझे अवश्य इस विषय की अधिक जानकारी होगी, सबसे प्रथम मैं ही पकड़ा जाऊँगा। तब बिना आज्ञा शिरड़ी छोडने की उतावली पर उसे बडा पश्चाताप हुआ । उसने बाबासे मन ही मन प्रार्थना की और शिरड़ी लौटने का निश्चय कर उसी रात्रि बाबा का नाम लेते हुए पौ फटने से पूर्व ही शिरड़ी वापस पहुँचकर चिंतामुक्त हो गया । फिर वह चावड़ी में बाबा की इच्छा और आज्ञानुसार ही रहने लगा और शीघ्र ही रोगमुक्त हो गया।

एक समय ऐसा हुआ कि अर्ध रात्रि को बाबा ने जोर से पुकारा कि ''ओ अब्दुल ! कोई दुष्ट प्राणी मेरे बिस्तर पर चढ़ रहा है।'' अब्दुल ने लालटेन लेकर बाबा का बिस्तर देखा, परन्तु वहाँ कुछ भी न दिखा। बाबा ने ध्यानपूर्वक सारे स्थान का निरीक्षण करने को कहा और वे अपना सटका भी जमीन पर पटकने लगे । बाबा की यह लीला देखकर अमीर ने सोचा कि हो सकता है कि बाबा को किसी साँप के आने की शंका हुई हो।

दीर्घ काल तक बाबा की संगति में रहने के कारण अमीर को उनके शब्दों और कार्यो का अर्थ समझ में आ गया था। बाबा ने अपने बिस्तर के पास कुछ रेंगता हुआ देखा, तब उन्होंने अब्दुल से बत्ती मँगवाई और एक साँप को कुंडली मारे हुए वहाँ बैठे देखा, जो अपना फन हिला रहा था। फिर वह साँप तुरन्त ही मार डाला गया । इस प्रकार बाबा ने सामयिक सूचना देकर अमीर के प्राणों की रक्षा की।

हेमाड़पंत (बिच्छू और साँप)

(१) बाबा की आज्ञानुसार काकासाहेब दीक्षित श्रीएकनाथ महाराज के दो ग्रन्थों भागवत और भावार्थरामायण का नित्य पारायण किया करते थे। एक समय जब रामायण का पाठ हो रहा था, तब श्री हेमाड़पंत भी श्रोताओं में सम्मिलित थे। अपनी माँ के आदेशानुसार किस प्रकार हनुमान ने श्री राम की महानता की परीक्षा ली- यह प्रसंग चल रहा था। सब श्रोता-जन मंत्रमुग्ध हो रहे थे तथा हेमाड़पंत की भी वही स्थिति थी। पता नहीं कहाँ से एक बड़ा बिच्छू उनके ऊपर आ गिरा और उनके दाहिने कंधे पर बैठं गया, जिसका उन्हें कोई भान तक न हुआ। ईश्वर को श्रोताओं की रक्षा स्वयं करनी पड़ती है। अचानक ही उनकी दृष्टि कंधे पर पड़ गई । उन्होने उस बिच्छू को देख लिया। वह मृतप्राय-सा प्रतीत हो रहा था, मानो वह भी कथा के आनन्द में तल्लीन हो । हरि-इच्छा जान कर उन्होंने श्रोताओं में बिना विघ्न डाले उसे उपनी धोती के दोनों सिरे मिलाकर उसमें लपेट लिया और दूर ले जाकर बगीचे में छोड़ दिया ।

(२) एक अन्य अवसर पर संध्या समय काकासाहेब वाड़े के ऊपरी खंड में बैठे हुए थे, तभी एक साँप खिड़की की चौखट के एक छिद्र में से भीतर घुस आया और कुंडली मारकर बैठ गया। बत्ती लाने पर पहले तो वह थोड़ा चमका, फिर वहीं चुपचाप बैठा रहा और अपना फन हिलाने लगा। बहुत-से लोग छड़ी और डंडा लेकर वहाँ दौड़े । परन्तु वह एक ऐसे सुरक्षित स्थान पर बैठा था, जहाँ उस पर किसी के प्रहार का कोई भी असर न पड़ता था। लोगों का शोर सुनकर वह शीघ्र ही उसी छिद्र में से अदृश्य हो गया, तब कहीं सब लोगों की जान में जान आई।

बाबा के विचार

एक भक्त मुक्ताराम कहने लगा कि चलो, अच्छा ही हुआ, जो एक जीव बेचारा बच गया। श्री. हेमाड़पंत ने उसकी अवहेलना कर कहा कि साँप को मारना ही उचित है। इस कारण इस विषय पर वादविवाद होने लगा । एक का मत था कि साँप तथा उसके सदृश जन्तुओं को मार डालना ही उचित है, किन्तु दूसरे का इसके विपरीत मत था। रात्रि अधिक हो जाने के कारण किसी निष्कर्ष पर पहुँचे बिना ही उन्हें विवाद स्थगित करना पड़ा। दूसरे दिन यह प्रश्न बाबा के सामने लाया गया। तब बाबा निर्णयात्मक वचन बोले कि '' सब जीवों में और समस्त प्राणियों में ईश्वर का निवास है, चाहे वह साँप हो या बिच्छु । वे ही इस विश्व के नियंत्रणकर्त्ता है। और सब प्राणी साँप, बिच्छू इत्यादि उनकी आज्ञा का ही पालन किया करते हैं। उनकी इच्छा के बिना कोई भी दूसरों को हानि नहीं पहुँचा सकता । समस्त विश्व उनके अधीन है तथा स्वतंत्र कोई भी नहीं है। इसलिए इमें सब प्राणियों से दया और स्नेह करना चाहिए। संघर्ष एवं वैमनस्य या संहार करना छोड़कर शान्त चित्त से जीवन व्यतीत करना चाहिए। ईश्वर सबका ही रक्षक है। ''

।। श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु । शुभं भवतु।।

सप्ताह पारायणः तृतीय विश्राम